कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

आसन

लेखक

डाक्टर बालेश्वर प्रसाद सिंह

प्रकाशक

स्वास्थ्य ग्रन्थ भन्डार
बादशाही मंडी प्रयाग

प्रथम आवृत्ति] अगस्त १९४६ [मूल्य ३॥)

प्रकाशक—

स्वास्थ्य ग्रंथ भंडार

३८७, बादशाही मंडी, प्रयाग।

कुल प्रतियाँ १२००

मुद्रक—

मिशन प्रेस, प्रयाग।

विषय सूची

शुद्धाशुद्धि पत्र

अशुद्धि	पृष्ठ संख्या	लाइन	शुद्धि
शरीर को ही काम है	१	१२	शरीर का ही काम है।
अववयों	१	१५	अवयवों
ठ्यायाम	२	८	व्यायाम
सादी	३	१२	सारी
स्वस्य	४	२४	स्वस्थ
मूल्यवान	७	५	मूल्यवान
रीढ़	१०	१५	रीढ़
ओर सीने से गर्दन की ओर जाते हैं	१२	१७	और सीने से गर्दन की ओर जाते हैं।
शरीरिक	१५	२०	शारीरिक
पशुवल	१६	६	पशुबल
दर्घायु	१६	२१	दीर्घायु
बतावे	२५	२	बनावे
हा	३०	१७	हो
उसे नाइड्रोजन	३२	२४	उसमें नाइट्रोजन
सिंह	४२	२२	सिंह
सिर्फ़	४६	१०	सिर्फ
चा हये	४७	६	चाहिए
घुटन	५६	५	घुटने
मेंर खना	८३	११	में रखना
तनाव या जोर	८८	२२	तनाव या जोर पड़ता है।
सारी	८६	६	शरीर

अशुद्धि	पृष्ठ संख्या	लाइन	शुद्धि
सक्ल	६१	२४	सबल
शुल	६२	२६	दिल
(१०० पृष्ठ पर प्रथम दो लाइनों को पृष्ठ के अन्तिम लाइन में जोड़ कर पढ़ें)			
क्पिरीत	१०५	१२	विपरीत
एकबार	१२०	२५	एक बार
तान में	१३०	६	तानने में
करने समय	१४२	१२	करते समय
आरंम	१५३	५	आरंभ
आय	१५६	१	आप
मन बटोरने में पर	१५९	५	मन बटोरने पर
स्पष्ठ	१७५	७	स्पष्ट

शरीर-रचना

किसी भी व्यायामपद्धति को भली भाँति समझने और उससे पूरा लाभ उठाने के लिये यह आवश्यक है कि शरीर-रचना का कम से कम साधारण ज्ञान पहले कर लिया जाय। किन किन आसनों से शरीर के किन किन अंगों पर और कितना ज़ोर पड़ता है, और कितना पड़ना चाहिये यह जानना बहुत ज़रूरी है। क्योंकि हम यह पहले ही बता देना चाहते हैं कि आसनों का उद्देश्य पहलवान बनाना नहीं है। उनका लक्ष्य है शरीर और मन को निरोग बना कर मनुष्य को दीर्घायु बनाना, जिससे वह पूरी उम्र पाकर संसार के सच्चे आनंद का अनुभव करता हुआ अपना कर्तव्य पालन करे।

तो, शरीर एक साथ ही एक ऊँचे दर्ज़े की मशीन और एक सुव्यवस्थित नगर है। खाये हुये भोजन से रसों को बना कर उसी से स्वयं अपने को चलाना और साथ ही एक बड़े आधुनिक नगर की भाँति अपनी सफ़ाई और रक्षा; हर एक मुहल्ले, हर एक घर, हर एक कोने की, करते चलना यह शरीर को ही काम है। किसी नगर के ख़ास ख़ास मुहल्लों ही कि तरह शरीर में कुछ संस्थान हैं जिनके द्वारा शरीर-यंत्र का सब काम स्वतः होता चलता हैं। ये संस्थान उन अंगों या अवयवों के समूह को कहते हैं जिनके द्वारा शरीर के अंदर रक्त-संचालन, पाचन, विसर्जन तथा श्वास प्रश्वास आदि क्रियायें हुआ करती हैं। ये कुल आठ हैं—मांस, अस्थि, पाचन, रक्त, संचालन, श्वास, मूत्र, स्नायु तथा उत्पादक-संस्थान। इनमें से आसनों का मुख्य संबंध अस्थि-संस्थान तथा स्नायु-संस्थान से है।

शरीर के मुख्य चार भाग हैं—

(१) सिर (२) गर्दन, (३) धड़ तथा (४) ऊपर नीचे की शाखायें। इनमें कुल २०१ हड्डियां हैं। सबसे पहले मांस-संस्थान का नंबर आता है जिसके अंतर्गत पेशियां, पुट्ठे और मांस आदि हैं। पर आसन-साधक के लिये सब से महत्वपूर्ण पाचन और श्वास-संस्थान हैं। पाचन-पोषण संस्थान के अंगों द्वारा भोजन शरीर में ले जाया जाकर पचाया जाता है और फिर उससे रस, रक्त आदि धातुएँ बनकर बेकार भाग मल-मूत्र के रूप में बाहर निकाल दिया जाता है। आसनों का पहला लक्ष्य है इस क्रिया को ठीक करना। कुश्ती, डंड, बैठक, मुगदर आदि पेशियों के व्यायाम पुट्ठों को तगड़ा ज़रूर बनाते हैं, और उनका अधिकतर संबंध मांससंस्थान से ही रहता है. पर ये पाचन-यंत्र को सुधारने और दीर्घकाल तक ठीक हालत में रखने में सहायक नहीं होते, और प्रायः बाधक भी हो जाते हैं।

स्वास्थ्य के मानी में शरीर के अंदर सबसे महत्वपूर्ण यही पाचन-पोषण वाली क्रिया है। इसके खास अंग हैं पेट (आमाशय) बड़ी आंत, छोटी आंत, जिगर (Liver) तिल्ली आदि; और मूत्र संस्थान का मुख्य अंग है गुरदा या वृक्क (Kidny)।

हल, शलभ, धनुष मयूर आदि कुछ आसन ख़ासकर बिगड़े हुए पाचन संस्थान को फिर से दुरुस्त कर सदा उसे ठीक हालत में रख सकते हैं।

हाज़में के बाद सांस-संस्थान का नंबर आता है। इस के ख़ास अंग हैं नाक, फेफड़े दिल आदि। ये बहुत नाज़ुक और साथ ही शरीर के मुख्य अंग हैं। प्राणायाम ही इन्हें ठीक हालत में रख सकता है। ये एक बार बिगड़ने पर मुश्किल से सुधरते हैं। किसी भी कसरत से दिल की धड़कन बढ़ जाती है पर आसन दिल की धड़कन को उतनी ही मात्रा में बढ़ाते हैं जितना कि इनके लिये उचित है। उन पर ज़्यादा ज़ोर डाल कर उन्हें निकम्मा नहीं बनाते।

स्नायु-संस्थान (Nervous system) मानव शरीर का सबसे मूल्यवान भाग है क्योंकि इसका संबंध चेतनाशक्ति तथा ज्ञानेंद्रियों से है। इसका मुख्य अंग है दिमाग़ जो सारे शरीर का मालिक है। इसी की आज्ञा से शरीर के सारे अंग अपना काम करते हैं और बाहरी दुनियां की सारी ख़बरें दिमाग़ तक पहुँचाते हैं। इसको ठीक हालत में रखना पहला कर्तव्य है। भारी कसरतों से बहुधा दिमाग़ कुंठित हो जाता है। सर्वाङ्ग शीर्षासन तथा विपरीतकरणी आदि आसन दिमाग़ के लिये परमोपयोगी सिद्ध हुये हैं।

उत्पादक संस्थान भी, जिसके अंदर जननेंद्रियां आती हैं, कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। आहार और यौन-धर्म ये दोही मनुष्य के प्रधान व्यापार हैं, जहां तक एक साधारण 'प्राणी' के रूप में उसका संबंध है। आज दिन सैकड़े पीछे निन्यानबे मनुष्य इस संस्थान की गड़बड़ी से परीशान हैं। सादी आधुनिक सभ्यता का अभिशाप सा हो गया है इन इंद्रियों संबंधी रोग जिसे प्रायः 'गुप्त' रोग या 'पोशीदा' बीमारी के नाम से पुकारा जाता है; और लोग लज्जावश जानकार से सलाह न लेकर इश्तहारी और '२४ घंटे में नव-यौवन देने वाली' दवाइयों के शिकार होकर अपना स्वास्थ्य और धन दोनों नष्ट कर रहे हैं। सारे अख़बार 'नामर्दी' की दवाइयों से गंदे हो रहे हैं। सारी दुनियां में यही रोना है।

प्राणायाम तथा कुछ आसन (मयूर, सिद्ध, आदि) इस संस्थान को दोषरहित करते और सदा ठीक रखते हैं।

अब हम संक्षेप में शरीर के अवयवों पर सरसरी दृष्टि डालते हैं:—

शरीर के अवयव

खाल—यों देखने से सब से पहले शरीर की खाल या चमड़ी पर दृष्टि जाती है। चमड़ी का संबंध स्पर्श (टच) नाम की ज्ञानेंद्रिय से है। इसको निरोग रखना नितांत आवश्यक है, और इसके लिये सबसे उपयोगी क्रियायें

हैं मालिश (सूखी या तैलयुक्त) धूप, वायु, जल तथा भाप (कभी-कभी) स्नान आदि।

मांस—खाल के नीचे ही मांस नहीं है, बीच में चर्बी का स्थान है जिसके छोटे छोटे टुकड़े असंख्य सूत्रों (फ़ाइवर) या झिल्लियों (मेंब्रेन) से बँधे से रहते हैं। इन्हीं सूत्रों के अंतर्गत वे स्नायुसूत्र (नर्वफ़ाइवर) हैं जो दिमाग़ से निकली हुई मोटी स्नायुयों से चलकर मांस से होते हुये खाल तक आते हैं। ये परम चैतन्य (सेंसिटिव) होते हैं और इनका काम शरीर के बाहरी अनुभव प्रतिक्षण दिमाग़ तक पहुँचाते रहना है। इनके सिवा असंख्य ख़ून की नालियां और मांस को ढकने वाली झिल्लियां हैं जिनके नीचे मांस और पेशियां सुरक्षित रहती हैं।

सेल्—शरीर के अंदर जितना भी मांस या पेशियां आदि हैं वे सब कई प्रकार के तंतुओं (टीशू) से बने हैं और ये तंतु असंख्य प्रकार के कोशों (सेल्) से बनते हैं। इस प्रकार सारे शरीर को हम रक्तकोशों (ब्लडसेल्स) द्वारा निर्मित कह सकते हैं। इसे 'कोष' या 'कोषाणु' भी कहा जाता है। इन्हें हम आगे 'सेल' नाम से ही पुकारेंगे क्योंकि शरीर के अन्दर सबसे मूल्यवान् चीजें यही हैं। इन सेलों के द्वारा ही सब प्रकार के मांस, पेशियां तथा हड्डियां बनती हैं। ये प्रतिक्षण अनवरत रूप से शरीर की इस पोषण क्रिया में लीन रहते हैं।

कुछ सेल दिल और दिमाग़ बनाते हैं और कुछ के द्वारा उस परम महत्वपूर्ण नाड़ी की रचना होती है जिसे सुषुम्ना, रीढ़ या स्पाइनल कॉर्ड कहते हैं। जो आदमी जितना ही तंदुरुस्त, ताज़ा और जानदार है, जिसका आहार विहार, रहन-सहन, जितनाही सहज, स्वाभाविक और सुंदर है उसके ये सेल उतने ही सजीव, प्रबल और नवीन होते हुये उत्तम रक्त तथा रसों की रचना द्वारा, युवा, और स्वस्थ शरीर निर्माण में समर्थ होते हैं। दूसरे शब्दों में, ये सेल ही जीवन हैं। जीवन सारे लक्षण वैज्ञानिक अनुशीलन द्वारा इन में मिलते हैं, जैसे—

(१) उत्तेजना, या सजीवता; जैसे बाहरी बातों से प्रभावित होकर फैलना या सिकुड़ना आदि जीवन के सारे लक्षण।

(२) एकीकरण, यानी भोजन करना, पाचन करना, और उससे पाई हुई शक्ति से सारे काम करना।

(३) वृद्धि

(४) संतानोत्पादन।

(५) अपने अंदर के विकार को निकाल फेंकना और अहर्निश अपने को नवीन सेलों में परिवर्तित करते रहना।

यह पांचवीं क्रिया स्वास्थ्य के लिये सबसे महत्वपूर्ण है। जिस मनुष्य का स्वास्थ्य और आहार विहार जितना ही उत्तम और स्वाभाविक है उसके सेल ही यह क्रिया भली भांति कर पाते हैं।

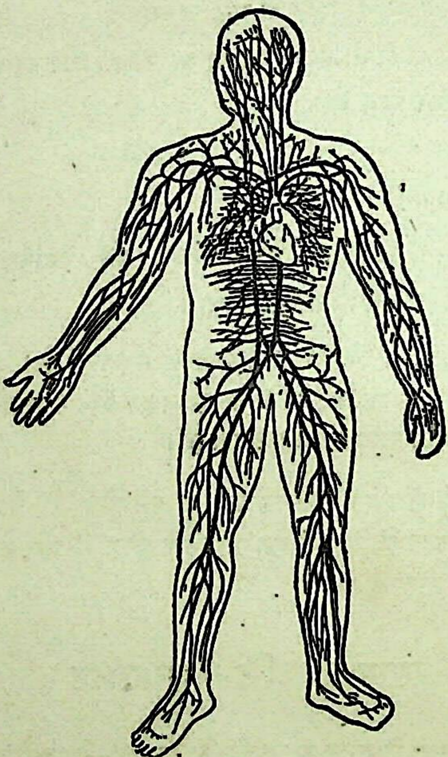
अब स्वयं ये सेल एक सूक्ष्मतर तत्व से बने होते हैं जिन्हें जीवोतंत्र या प्रोटोप्लाज़्म कहते हैं जिस में एक गाढ़ा द्रव होता है और इसी में जीवन का तत्व निहित होता है।

रसायनिक दृष्टि से शरीरगठन

रसायनिक दृष्टि से शरीर इन तत्वों से बना है—आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाईड्रोजन, कार्बन, कैलशियम (चूना) फ़ास्फ़ोरस, सल्फर (गंधक) प्रोटीन, पौतेशियम सोडियम, मैगनिशयम और आयरन (लोहा)।

ये सभी तत्व उचित और उचित रूप में खाये हुये तथा उचित व्यायाम द्वारा पचाये हुये आहार तथा पेय द्वारा बनते हैं और उचित अनुपात में इन की उपस्थिति पर ही स्वास्थ्य निर्भर करता है।

शरीर के मुख्य अंग



शरीर के मुख्य चार भाग माने जा सकते हैं, जैसा कि पहले कहा जा चुका है।

(१) सिर।
(२) गर्दन।
(३) धड़
(४) ऊपर नीचे की शाखाएँ अर्थात् हाथ पैर। और अब हम क्रम

से इनचारों का उतना ही वर्णन करेंगे जितना आसनों की व्यायाम पद्धति से पूर्ण लाभ उठाने के लिये जानना आवश्यक है।

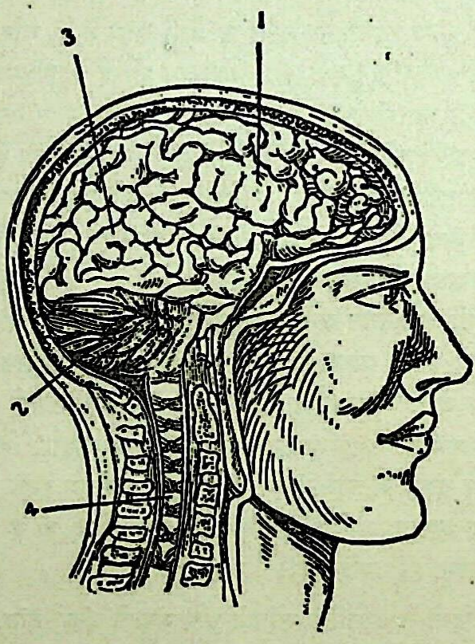
(१) सिर

सिर के अंतर्गत खोपड़ी और चेहरा हैं। दिमाग़, आँख, कान, नाक जीभ आदि मुख्य ज्ञानेंद्रियाँ शरीर के इसी भाग में हैं, और शरीर का यह भाग सबसे अधिक सुकुमार और मूल्यवान भी है। संस्कृत में शरीर के इस भाग को 'उत्तमांग' भी कहा है। इसी के स्वास्थ्य पर मानसिक स्वास्थ्य पूरा और शारीरिक स्वास्थ्य का भी अधिकांश निर्भर करता है। मन स्वस्थ रहने से ही शरीर निरोग रह सकता है। अतः सिर तथा उसके अंतर्गत रहने वाली सारी इंद्रियों की सुरक्षा तथा वृद्धावस्था तक इन्हें ठीक अवस्था में रखना पहला कर्तव्य है।

आसनों के अंतर्गत अकेला शीर्षासन ऐसा है जो सिर तथा उसके अंतर्गत आने वाली आंख, कान, आदि तथा सबके मालिक दिमाग़ जैसी इन्द्रिय को उत्तम अवस्था में दीर्घकाल तक रखने में समर्थ तो है ही साथ ही कृत्रिम सभ्यता के अभिशाप स्वरूप मिथ्या आहार विहार के कारण दूषित तथा नष्ट प्राय ज्ञानेन्द्रियों को फिर से कार्यक्षम करने में समर्थ होता है। सर्वाङ्ग आसन, जो कि शीर्षासन का छोटा भाई ही है एक प्रकार सें, लगभग उतना ही उपादेय है।

ज्ञानेंद्रियों के अतिरिक्त खोपड़ी और मुंह के अंदर, दांत, गला, तालू, जीभ, कौआ, कौड़ी, होठ, ठुड्डी मसूड़े आदि कुछ अन्य अवयव भी हैं जो प्रायः उतने ही सुकुमार और मूल्यवान हैं। आसन व्यायामपद्धति के अंतर्गत कुछ 'वंध' (जैसे जालंधर वंध) और मुद्रायें तथा आसन (जैसे सिंहासन) हैं जिनका प्रधान लक्ष्य है इन अवयवों का स्वास्थ्य ठीक रखना।

पर खोपड़ी और उसके अंदर को सभी इन्द्रियों के व्यायाम के निमित्त आसनों बंधों, मुद्राओं तथा 'नेति' आदि कुछ अन्य योगिक क्रियाओं से काम लेते समय विशेष सतर्कता तथा सावधानी की आवश्यकता होती है। आरंभ में किसी विशेषज्ञ की देखरेख में अथवा इस पुस्तक में दिये हुये



नियमानुसार व्यायाम करना अनिवार्य है। क्योंकि उत्तमांग के सभी अवयव, ख़ास कर आँख और कान तथा मस्तिष्क की बनावट इतनी जटिल और साथ ही सुकमार है कि आवश्यकता से अधिक ज़ोर पड़ने पर हानि की संभावना रहती है।

(२) गर्दन

सिर और धड़ को संयुक्त करती है गर्दन, और रीढ़ की हड्डियां ही गर्दन तक चली आई हैं। रीढ़ का ही एक भाग है गर्दन। इस में कई छोटी छोटी मुलायम हड्डियाँ माला की भाँति एक दूसरे में पिरोई हुई हैं, जो लचीली और ऊपर नीचे, दाएँ बाएँ हर ओर आसानी से घुमाई जा सकती हैं। ये हड्डियाँ मांसपेशियों से ढकी रहती हैं। इस भाग के स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये शीर्ष, सर्वांग, मत्स्य, तथा शलभ, आसन मुख्य हैं।

'थाइराइड' नाम की गिल्टी गले में होती है और इस गिल्टी को ठीक अवस्था में रखने से ही यौन-स्वास्थ्य (जननेन्द्रिय संबंधी व्यापार) उचित अवस्था में रहता है। इन गिल्टियों से कुछ रस निकला करते हैं जो शरीर पर स्वास्थ्यवर्धक प्रभाव रखते हैं। व्यायामपद्धति तथा आहार का उद्देश्य यह होना चाहिये कि दीर्घकाल तक ये गिल्टियाँ नवीन और ताजी अवस्था में रहती हुई अपनी अपनी इस धारा के स्रोत को सूखने न दें। थाइराइड के ऊपर ललाट में स्थित जो पहली गिल्टी है इसे अंग्रेज़ी में पिच्यूटरी ग्लेंड'. कहते हैं और इसकी रसधारा का प्रभाव मस्तिष्क, बुद्धि, स्मृति तथा मेधा आदि मनुष्य की विशेष शक्तियों पर पड़ता है। और उन्हें अच्छा या बुरा बनाया करता है।

गर्दन के सामने के भाग को गला कहते हैं। इस में श्वास नाली तथा वह प्रधान नाड़ी है जिस के अंदर से होकर खाये पीये हुये सारे पदार्थ पेट या आमाशय में पहुँचते हैं। इसके सिवा आँख, कान तथा नाक का वह साधारण मार्ग भी गले में ही स्थित है जिस में एक इन्द्रियों का त्रिवेणीसंगम गले की जड़ में तालू के नीचे है। इस मार्ग तथा उस संगमस्थल को सदा स्वच्छ और निर्दोष रखना चाहिये। अनुचित अनुपात में तर पर या जल्दी २ एक के बाद दूसरी गर्म--ठंडी या बे मेल खाने पीने की चीज़ें इस रास्ते से जब गुजरती हैं तब जुकाम या इसी तरह

की कोई न कोई गड़बड़ी शरीर संस्थानों के अंदर पैदा हो जाती है। जुक़ाम बिगड़ने या सूखने पर बड़ा विकराल रूप धारण कर सकता है और 'डिप्थीरिया' आदि कुछ शिकायतें (ख़ास कर बच्चों के मामले में) तो ऐसी होती हैं कि मिनटों में प्राणों का वारा न्यारा तक हो सकता है।

शीर्ष, सर्वाङ्ग के अतिरिक्त एक बहुत साधारण यौगिक क्रिया है जो गले के मार्ग को सदा स्वच्छ रखती हुई इस संगम-क्षेत्र को सदा निर्दोष रखती है, जिससे सभी ज्ञानेन्द्रियां मरते दम तक अपना व्यापार सुचारुरूप से करती रहती हैं और ज़ुकाम वगैरह तो कभी हो ही नहीं सकते। इस का नाम है 'नेतिक्रिया'। जलनेति के लाभ भी लगभग इसके समान ही हैं।

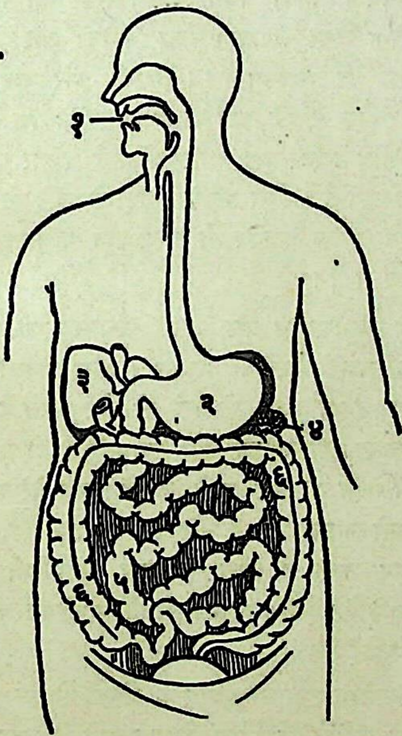
हमें याद रखना चाहिये कि खोपड़ी में कुल २२ हड्डियां हैं।

(३) धड़

सिर और गर्दन के नीचे से धड़ शुरू होता है। इसके अंदर मध्य-शरीर के मुख्य भाग—पीठ, सीना, पेट, पेड़ू आदि हैं। सबसे पहले हम रीढ़ को लेते हैं। इसको मेरुडंड भी कहते हैं। इसमें कुल २६ हड्डियां हैं। पूरी रीढ़ में ये हड्डियाँ एक दूसरी में पिरोई हुई हैं, एक जंजीर की तरह। रीढ़ की ये हड्डियाँ सब ओर लचीली होती हैं। जिसके शरीर में यह लोच जितना ही अधिक है वह उतना ही स्वस्थ और नवीन, यानी युवा है, और जिसकी रीढ़ जितनी ही सख़्त या न झुक या मुड़ सकने वाली है वह उतना ही अस्वस्थ या बूढ़ा है। शरीर के अंदर विषैले पदार्थ एकत्रित होने पर रीढ़ कड़ी हो जाती है और कोई न कोई विकार उपस्थित हो जाते हैं। सारे शरीर का आधार यही रीढ़ है। ऊपर सिर तथा गर्दन, नीचे कमर तथा जंघा आदि, सामने सीना और पीछे पीठ; ये सभी रीढ़ के सहारे हैं। गर्दन भी वास्तव में रीढ़ का ही एक भाग है और वह २६ में से ७

हड्डियां अकेले गर्दन में ही हैं। बीच की १२ हड्डियां छाती या सीने की हैं और नीचे की ५ हड्डियों से कमर बनी हुई है।

रीढ़ की पूरी जंजीर ब्रह्मरंध्र (पाखाने के रास्ते) के ठीक ऊपर (प्रायः २ इंच) समाप्त होती है। मनुष्य में जहां यह समाप्त होती है वहीं से



पशुओं में पूँछ शुरू होती है। और ऊपर सिर के ठीक नीचे से यह आरंभ होती है।

छाती की १२ हड्डियों से एक घेरा या पिंजरा सा बन जाता है जिनमें सामने की तरफ दोनों ओर १२-१२ पसलियाँ हैं, जो सामने एक हड्डी से जुड़ी हुई रहती हैं। इस तरह रीढ़ में कुल ३७ हड्डियां हुईं एक हिसाब से। इन पसलियों के पिंजड़े के अंदर दिल, फुसफुस फेफड़े आदि शरीर के परम महत्वपूर्ण अवयव हैं जिनका संबंध स्वास्थ्य से ही नहीं बल्कि जीवन से है।

इनके सिवा जिगर (लीवर) प्लीहा (स्प्लीन) और गुर्दे (किडनीज़) भी पसलियों द्वारा ही सुरक्षित हैं।। दाहिनी और बाईं ओर दोनों फेफड़े, और बाईं ओर दिल है, जो पान की शक्ल का त्रिकोण हैं। ढाँचे के नीचे जिगर और उसीके बराबर बाईं ओर प्लीहा है जिगर खाये हुये अन्न को पचाकर रस बनाता है। दिल प्रतिक्षण घड़ी के काँटे की तरह काम करता हुआ शरीर के प्रत्येक अवयव को ताज़ा ख़ून पहुँचाता रहता है। गुर्दे का संबंध मूत्राशय से है।

शरीर की पूरी मशीन और उसके संचालन का केंद्रस्थल यही है। उक्त पिंजड़े के ऊपरी हिस्से में टेंटुआ (सांस कीनली) और भोजन की नली भी है जो ऊपर से नीचे की ओर आती है और इनकी दोनों ओर बहुसंख्यक रक्त की नालियां और स्नायुतंतु है जो गर्दन से सीने को और सीने से गर्दन की ओर आते जाते हैं। इसी घेरे या पिंजड़े के बीचो बीच, जहां छाती ख़तम होती है और पेट शुरू होता है, मांस पेशी की एक महराबदार चादर है जिसे पक्ष-उदर मध्य पेशी (डायफ्रागम्) या महाप्राचीरा कहते हैं। इसीके बीच में से होकर भोजन की नाली गले से चल कर पेट को गई है।

व्यायाम, आसन तथा प्राणायाम के सिलसिले में इस महाप्राचीरा का महत्व बहुत अधिक है जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे। यहां पर हम केवल इतना ही कहेंगे कि रीढ़, पीठ तथा उसके आस पास की मांस पेशियों को सर्वोत्तम अवस्था में रखने के लिये विशेष आसन हैं भुजग,

शलभ, धनुष, हल तथा पश्चिमतान। सीना या छाती तथा उसके घेरे या पिंजड़े के बीच रहने वाली हृदय (दिल) तथा फुसफुस (फेफड़े) जैसी परम सुकुमार और अनमेल इन्द्रियों के स्वास्थ्य के लिये प्राणायाम श्रेष्ठ है, पर ये प्राणायाम कई प्रकार के और कई विधि से होते हैं और किस प्रकार के दिल या फुसफुस वाले के लिये कौन सा प्राणायाम और कितनी देर का और किस समय ठीक पड़ेगा यह बात योगिक व्यायाम-विशेषज्ञ से जान कर या इस पुस्तक में दिये हुये नियमों के अनुसार ही आरंभ करना चाहिये, आसनों के अंतर्गत जो रीढ़ तथा पीठ के लिये उपादेय कहे गये हैं वही छाती तथा पेट के लिये भी लाभप्रद हैं, क्योंकि घेरे के दोनों ओर की मांसपेशियां, हड्डियां पसलियां तथा स्नायुतंतु, या नसें एक दूसरे से इस तरह घुली मिली और जुड़ी हुई हैं कि जो व्यायाम एक ओर के लिये ठीक है वही दूसरी ओर के लिये भी। कुछ आसन ऐसे हैं जो ख़ास कर पेट की शिकायतें जैसे बदहज़मी, कब्जियत या बिगड़े हुये जिगर, प्लीहा और गुर्दों को ठीक करते हैं। ऐसे आसनों में पहला नंबर है मयूर का और लगभग इतने ही लाभप्रद हैं मत्स्य, भुजग, शलभ और पश्चिमतान तथा पादहस्त। महामुद्रा नामक प्राणायाम में वह शक्ति है इसके नियमित रूप से करने वाले के लिये खाया हुआ विष भी अमृत हो जाता है, और बदहजमी या अरुचि की शिकायत की तो बात ही क्या। भुजग आसन करने वाला पत्थर भी हज़म कर सकता है। पश्चिम-तान, पादहस्त, तथा अर्धमत्स्येंद्र करने वाले को क़ब्ज़ियत नहीं रह सकती और हमेशा पेट साफ़ रहेगा और आँतें बराबर स्वच्छ रहती हुई अपना व्यापार सुचारु रूप से करती रहेगी। इन आसनों से बड़ा भारी लाभ यह होता है कि पेट की मांस पेशियों का कुछ इस तरह का सात्विक व्यायाम और संशोधन हो जाता है कि न तो अंडबंड बाज़ारू चीज़ें खाने की हाही होती है और न कभी पेट बढ़ता है। आसन करने वाले का शरीर कभी बेडौल हो ही नहीं सकता।

इस पुस्तक में अवस्था तथा बलाबल के अनुसार आसन व्यायाम प्राणायाम आदि की वह विधि बताई गई है कि जिससे आरंभ करने वालों को हानि की संभावना कभी न रहे।

अगले अध्यायों में इन सभी आसनों की क्रिया और विधि विस्तार से बताई जायगी।

(४) ऊपर नीचे की शाखाएं

अब हमें हाथ (भुजा) और पैर की बनावट के बारे में थोड़े से शब्द और कहने हैं। ऊपर की शाखा से मतलब है दोनों भुजायें और हाथ (हँसली से लेकर उँगलियों तक) और धड़ के नीचे की शाखा के अंदर दोनों रान (जंघा) और पैर (नितंब या चूतड़ से लेकर पांव की उँगलियों तक) आते हैं।

ऊपर की शाखा के मुख्य भाग हैं—हँसली, खवा (हँसली और खवा मिल कर कंधा बना है) ऊपर की बांह, सामने की बांह, कलाई और हाथ। एक पूरी शाखा में कुल ३२ हड्डियां (हँसली १; खवा १; ऊपरी बाँह १; नीचे की बाँह २; कलाई ८; हथेली ५ (उँगलियों को छोड़ कर); उँगलियाँ १४; होती हैं। दोनों शाखाओं या भुजाओं में कुल ६४ हड्डियाँ होती हैं जो सुदृढ़ मांस पेशियों से तथा असंख्य स्नायुतंतुओं और नसों से ढकी रहती हैं। हँसली की हड्डी छाती के अगले और सबसे ऊपरी हिस्से में है और खवे की हड्डी पीठ के ऊपरी भाग में है। इसका (खवे की हड्डी का) सबसे महत्वपूर्ण भाग वह गोल गड्ढा है जिसमें ऊपर की बाँह का ऊपरी सिरा बैठाया हुआ है। यह गढ़ा गोले की आकार का है जिससे बाँह चारों ओर घुमाई जा सकती है। इसी तरह के गड्ढे और गेंद की तरह के गोले उन सभी जगह बने हैं जहां-जहां हड्डियों के ख़ास-ख़ास जोड़ें हैं, जैसे कंधा कूल्हे, घुटने, कलाई आदि।

नीचे की शाखा के मुख्य अवयव हैं कूल्हा, रान, टांग, टखना और पैर जिनमें कुल ३१ (कूल्हा १; रान १; घुटना १; टाँग २; टखना ७: पैर

५; उँगलियाँ १४) हड्डियां हैं और इनकी साधारण रचना ऊपर की शाखा से वहुत भिन्न नहीं है।

कूल्हे के कुल तीन भाग हैं—(१) ऊपर का चौड़ा हिस्सा (जघन) (२) नीचे का तंग हिस्सा (कुकुंद) जिसके सहारे बैठा जाता है, और (३) सामने का चौड़ा हिस्सा (भगास्ति या प्यूविस)। बचपन में ये तीनों हिस्से अलग अलग दिखाते हैं पर आगे चल कर तीनों एक में मिल जाते हैं। ये कूल्हे के दोनों ओर दो गोल गड्ढे बनाते हैं जिनमें दोनों रान के दोनों सिरे भली भाँति बैठाये हुये से होते हैं। ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रायः ऊपर वाली शाखा की भाँति ही कूल्हे पर भी गेंद-गड्ढे का वही इंतज़ाम है जिस से रान और टांगें इच्छानुसार सब ओर तानी या फैलाई जा सकें। रान की हड्डी ही शरीर की सब से लंबी चौड़ी और मज़बूत हड्डी है। शरीर का खंभा कहना चाहिये इसे। इसके नीचे का सिरा ज़रा फैला हुआ होता है और घुटने पर टांग की हड्डी से मिला हुआ रहता है। यह जोड़ बड़ा मज़बूत होता है और इसको सदा अच्छी हालत में और लोचदार रखना चाहिये। गठिया या बात वग़ैरह की शिकायत वालों का यही जोड़ पहले निकम्मा होना शुरू होता है।

कहना व्यर्थ है कि मनुष्य की शारीरिक शक्ति, उसके हाथ पांव की शक्ति के ऊपर ही निर्भर करती है। मनुष्य अपने सारे काम हाथों से करता है। जिसकी भुजाओं में बल नहीं, जिसकी जंघाएँ निर्बल हैं, उसका जीवन भारभूत है। मनुष्य की शरीरिक शक्ति का सब से बड़ा परीक्षास्थल युद्ध-क्षेत्र है। वर्तमान. महायुद्ध को देखते हुये कौन कहने का साहस करेगा कि अब इस नवीन सभ्यता के युग में साइंस के ज़माने में आदमी को बर्बर-युग की भाँति लड़ाई के मैदान में जाने की ज़रूरत नहीं रही? यूरोप और अमेरिका का प्रत्येक मनुष्य (१६ से ५० वर्ष की उम्र तक का) इस समय सिपाही है और उसके हाथ पैर की ताक़त पर ही उसकी जीविका

उन्नति, मान सम्मान तथा उसके देश और जाति का अस्तित्व निर्भर करता है। यह सदा स्मरण रखना होगा कि वसुंधरा और स्त्री सदा वीर-भोग्या रही है और रहेगी। आधुनिक तथा कथित 'शिक्षित' और 'सभ्य' मनुष्य, पढ़ने लिखने में चाहे जितनी उन्नति करले, दिमाग़ी कसरत से, बुद्धिवल द्वारा विज्ञान में चाहे जितनी उन्नति करता चले पर वह शारीरिक शक्ति या विशुद्ध 'पशुवल' की शक्ति परीक्षा की वह विकट घड़ी जो इस समय वर्तमान है, वरावर आया करेगी उन्नत से उन्नत देशों के राष्ट्रीय-जीवन में विज्ञान, शिक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति में जर्मनी, इंगलैंड या फ्रांस से आगे कौन था? पर ये ही राष्ट्र इस समय अपने प्रत्येक होनहार नवयुवक के हाथ पैर की शक्ति ढ़बाने की ओर ही सब से ज़्यादा दत्तचित्त हैं।

अस्तु, हमारे कथन का सारांश केवल यही है कि मन और बुद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नति में हम चाहे जितना आगे बढ़ें, और बढ़ना चाहिये ही क्योंकि इस ओर तरक्क़ी न की तो मनुष्य और पशु में अंतर ही क्या रहा—पर हाथ पैर की शक्ति की ओर से उदासीन होकर हम इस दुनियां में नहीं टिक सकते।

हमारा उद्देश्य मस्तिष्क या प्राणशक्ति को दुर्बल कर केवल भुजा और जंघा को तगड़ी बनाना नहीं। सर्वाङ्गीण शारीरिक उत्कर्ष साधन ही आसनव्यायाम पद्धति का लक्ष्य है। बाँह और रान तो पहलवानों सी हो जाय, और दिमाग़ निकम्मा हो चले, दिल कमज़ोर हो जाय बहुत ज़्यादा डण्ड बैठक से, तो ऐसी कसरत हमारे काम की नहीं। ऐसी कसरत करनेवाला दर्घायु नहीं हो सकता और न ज़्यादा दिन तक अपने उभड़े हुये पुट्ठों, वृषभकंध और खंभे की सी रानों का गर्व ही कर सकता है। आठ दस बरस के अंदर ही इनका उत्थान और पतन दोनों ही हो जाता है और प्रायः शरीर संग्रहणी या प्रमेह आदि जैसे जीर्ण रोगों का लीलास्थल हो जाता है। कारण यह कि अनुपात रहित अत्यधिक पेशियों के व्यायाम से खानपान में बदपरहेज़ी आये बिना रह

नहीं सकती। पहलवानों की ज़बान पर यह फिकरा रहता है कि "ताक़त तो बाज़ार में बिकती है" यानी दूध घी, मलाई, गोश्त आदि जितना ही ज़्यादा जो ख़रीद कर खा सकता है उतना ही वह ताक़तवर हो सकता है। पेट साफ़ करने वाली तथा भारी चीज़ों को पचाने वाली, कच्ची, हरी साग, सब्ज़ी, सलाद, नीबू आदि फलों के रस को यह घासपात या बिल-कुल बेकार चीज़ समझते हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि एकमात्र आसन-व्यायामपद्धति ही एक साथ ही, मनुष्य के आध्यात्मिक, मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य को निर्दोष और दीर्घ काल तक ठीक हालत में रख सकने का माद्दा रखती है। शलभ, मयूर, भुजङ्ग, पादहस्त, पश्चिमतान आदि बहुत से आसन ऐसे हैं जो शरीर के सारे अंगों पर इतना ज़ोर डालते हैं कि हर एक पेशी, हर एक जोड़ और हर एक स्नायुतंतु का इतना व्यायाम हो जाता है जितने की उसको आवश्यकता है। आधुनिक मनुष्य को सबसे ज़्यादा ज़रूरत है पेट तथा रीढ़ के व्यायाम की। दिन भर दफ़्तर या कचहरी या और कहीं बैठ कर लिखने-पढ़ने या इसी ढंग का कोई और काम करना। व्यायाम के लिये बहुत हुआ तो आधे घंटे का समय वह दे सकता है और यही इतना समय यदि उसने केवल पेशी के व्यायाम में ही लगा दिया तो शरीरयंत्र के अंदर का वह भाग जहां पाचन, पोषण और विसर्जन आदि क्रियायें होती हैं, प्रायः अछूता ही रह जाता है और उसको ज़रूरत सब से ज़्यादा है इसी भाग के व्यायाम की।

मनुष्य का स्वास्थ्य खाये हुये आहार के उचित परिपाक यानी हज़म करने पर ही निर्भर करता है। और तंदुरुस्ती चाहने वाले का पहला कर्तव्य है कि जो अंग खाने को हज़म करते हैं उन्हें पहले समझ ले, वे कैसे ठीक ढंग से काम कर सकते हैं, यह खूब जान ले और अपना भोजन, व्यायाम आदि ऐसा नियमित रखे कि ये पचाने वाले अंग हमेशा ठीक हालत में रहें।

आहार का परिपाक और इसके अवयव

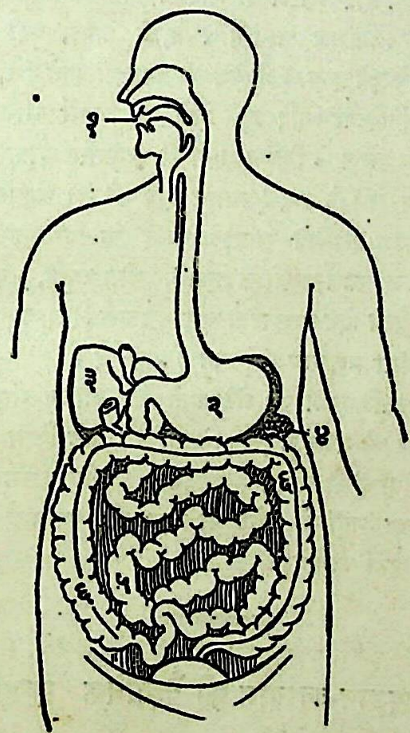
शरीर में दो क्रियाएँ सदा होती रहती हैं—पोषण और विसर्जन। यानी जो कुछ हम खाते-पीते हैं इसका रस, रक्त, धातु, हड्डी और कोश (सेल) आदि बनते रहते हैं और साथ ही खाये हुये आहार का जो अत्यावश्यक (एक मानी में) भाग है उसे तथा उसके साथ ही जो कुछ दूषित या विजातीय द्रव्य संस्थानों के अंदर एकत्रित हो गया है इसको मल, मूत्र, कफ थूक, लाला, या पसीना आदि के रूप में विभिन्न मार्गों से शरीर के बाहर निकाल फेंकना।

इन्हीं दोनों क्रियाओं से शरीर का स्वास्थ्य है। अब हम पहले पाचन-यंत्र को लेते हैं, क्योंकि इन दोनों क्रियाओं के करने वाले अंग बहुत कुछ एक ही है और यदि पाचन ठीक हो गया तो विसर्जन अवश्य ही ठीक हो जायगा।

पाचन यंत्र का पहला अंग वह भोजन की नली (एलीमेंटरी केनाल) है जो मुंह से शुरू होकर पाखाने के रास्ते तक गई है। भोजन का पचना मुँह से ही शुरू हो जाता है। खाना देखते ही या याद आते ही मुँह में लार भर उठती है। यह लार पाचक-गिल्टियों का रस है और उचित मात्रा में इसका बनना स्वास्थ्य का चिह्न है। दांत-जीभ के सहारे चबाए जाते समय भोजन इस लार की मदद से लेई की शक्ल में होकर उस नली के मार्ग से महाप्रचीरा से होता हुआ आमाशय की थैली में पहुँचता है। इस बीच में नली बार-बार सिकुड़ती रहती है जिससे आहार जिगर आदि पाचक-पोषक गिल्टियों का रस लेता हुआ आमाशय में पहुँचता है। नली में यह बार-बार घुमाने वाली क्रिया ठीक होती चलनी चाहिये जिससे खाते ही खाते आहार के मुख्य भाग का रस बन जाय।[1] और वह छोटी आँत में चला जाय जहाँ पक्वाशय (डुओडिनम) नाम का एक अवयव है। यहीं पर जिगर का रस इसे मिलता है जिसकी सहायता

[1] इस व्यापार को ठीक करने के लिये उड्डियान और नौली क्रिया से बढ़कर कोई चीज़ नहीं है।

से आहार का रस शरीर के तत्वों में परिवर्तित हो जाता है। पक्वाशय अर्ध चंद्राकार है और रस के घेरे में एक बड़ी गिल्टी है जिसे क्लोम कहते हैं। पक्वाशय की क्रिया पूरी होने के बाद यानी छोटी आंत की कई तहों में



पाचन क्रिया के एक अध्याय पूरे होने के बाद आहार बड़ी आँत की ओर खिसकता है। छोटी आंत (जो कि लंबाई में लगभग २२ फुट होती है) जहाँ ख़तम होती है वहीं से बड़ी आंत (६ फुट लंबी) शुरू होती है। बड़ी

आँत (कोलन) पहले पेड़ू के दाहिनी ओर से होकर ऊपर जाती हुई जिगर और आमाशय के नीचे से निकलती हुई बांई तरफ से नीचे को उतर आती है। जहाँ यह ख़तम होती है उसे मलाशय (रेक्टम) कहते हैं जिसका बाहरी द्वार ब्रह्मरंध्र या पाखाने का रास्ता है। उस भोजन की बड़ी नली के ही विभिन्न भाग हैं ये छोटी आँत, बड़ी आँत, मलाशय आदि जहां खाये हुये द्रव्य के विविध संस्कार हुआ करते हैं। इस पूरे मार्ग में बहुत से यंत्र, गिल्टियां आदि घुले-मिले हैं जिनमें भोजन पचता रहता और उसका रस शरीर के विविध तत्वों में रूपांतरित होता चलता है। इस क्रिया के समाप्त होने के बाद (लगभग ३-४ घंटे में) आहार का बचा हुआ भाग, (जो केवल इसलिये खाया जाता है कि विसर्जन क्रिया ठीक हो, जैसे चोकर, फल, साग-सब्ज़ी के छिलके, बीज आदि,) दूषित या विजातीय द्रव्य को लिये दिये मलद्वार से बाहर निकाल दिया जाता है। बड़ी आंत का आख़िरी सिरा मलाशय (रेक्टम) कहते हैं।

पूरी पाचनक्रिया में २४ घंटे लगते हैं। भोजन मुँह में पहुँचते ही दाँत और जीभ की मदद से ख़ूब पिसता है। यह क्रिया बहुत महत्वपूर्ण है। अन्न को दाँतों से चबाने में जितना ही अधिक समय दिया जा सके उतना ही अच्छा, नहीं तो आँतों पर बड़ा जोर पड़ता है। दाँत का काम आँत से नहीं लेना चाहिये।

आसन-व्यायाम की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

अभी कुछ वर्ष पहले तक व्यायाम के शास्त्रीय अथवा वैज्ञानिक महत्व की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। व्यायाम वीर पहलवान या फ़ौज के सिपाही लोग ही होते थे। इसके करने का एक मात्र उद्देश्य शारीरिक बल बढ़ाना होता था। सर्व-साधारण जनता का इस ओर कोई विशेष ध्यान

नहीं था। लड़के, बूढ़े, अधबूढ़े, जीर्ण रोगी या इसी प्रकार के और भी विपन्न लोगों को भी व्यायाम करना चाहिये—इस बात की शायद कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। और लड़कियां तथा स्त्रियाँ भी व्यायाम कर सकती हैं या इनके लिये भी व्यायाम उतना ही आवश्यक है जितना पुरुषों के लिये, यह बात तो कोई सोच भी नहीं सकता था।

इधर थोड़े दिनों से साधारण स्वास्थ्य रक्षा तथा उन्नति और विशेष कर कुछ ख़ास ख़ास रोगों की (मुख्यतः जीर्ण रोगों की) चिकित्सा के रूप में व्यायाम पर वैज्ञानिक व्यायाम-विशारद लोग बहुत ध्यान देने लगे हैं। इस प्रकार का देशव्यापी आंदोलन पहले जर्मनी, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों से आरंभ हुआ और अब भारत में भी इस विषय के वैज्ञानिक अनुशीलन की ओर विद्वानों तथा सर्वसाधारण का भी ध्यान आकर्षित हुआ है। पर अब भी बहुत कमी है, पाश्चात्य देशों की तुलना में एक प्रकार से नहीं के बराबर। अब भी सुबह या शाम, सड़क या पार्क में व्यायाम के लिये दौड़ते या तेज़ी से चलते हुये आदमी को लोग इस दृष्टि से देखते हैं कि मानो कोई असाधारण बात हो। इसका एक मात्र कारण यही है कि अभी भी इस देश में नियमित रूप से, वैज्ञानिक महत्व को समझ कर, व्यायाम करने वालों की संख्या बहुत कम है।

अस्तु, इस अध्याय में हम व्यायाम के, उस महत्व पर दो शब्द कहना चाहते हैं।

आधुनिक सभ्यता के युग में जैसे बहुत से नये प्रश्न जो बर्बर युग में अनुपस्थित थे. समाज के सामने आ गये हैं, इनमें से शायद सब से जटिल प्रश्न हो पड़ा है स्वास्थ्य रक्षा का ख़ास कर सभ्यों की और शिक्षितों की (जो जितना ही ज़्यादा पढ़ा लिखा और मार्जित है वह उतना ही अस्वस्थ और शारीरिक दृष्टि से दुर्बल और रोगग्रस्त है और शिक्षितों के मुख्य रोग हैं कोष्ठ-बद्धता या क़ब्ज़ियत तथा अजीर्ण या बदहज़मी।

आधुनिक युग ही कुछ ऐसा है कि नगर निवासी शिक्षितों को अधिक-

तर बैठे-बैठे लिखने-पढ़ने का काम करना पड़ता है। चलने फिरने की न उन्हें ज़रूरत है न फ़ुरसत। वर्तमान वैज्ञानिक युग में घर बैठे उन्हें जीवन यापन की सभी सामग्रियाँ भी मिल जाती हैं। किसी बात के लिये हाथ-पैर हिलाने की ज़रूरत नहीं। इस से और जो कुछ भी लाभ हुए हों उस पर विचार करने का इस पुस्तक में स्थान नहीं है पर इससे हानि जो हुई है उस से बचने और दूर करने का उपाय बताना ही हमारा उद्देश्य है।

जीविका के लिये जब मनुष्य को दिन भर मुक्त वायु में घूमना, दौड़ना और युद्ध करना या शिकार करना या खेत में काम करना पड़ता था तब स्वास्थ्य का प्रश्न न उतना जटिल था और न स्वास्थ्यरक्षा के लिये व्यायाम आंदोलन-का प्रश्न ही उठता था। तब तो पहलवानों और सैनिकों को ही या शौक़िया बल बढ़ाने की ख़्वाहिश रखनेवालों के लिये ही व्यायाम की ज़रूरत थी। मामूली लोगों का रहन-सहन ही ऐसा था कि आप से ही दिन भर के जीवनसंग्राम में इतना शारीरिक श्रम हो जाता था। कि अलग से कोई कसरत करने का सवाल ही नहीं उठ सकता था। आज भी जो इस प्रकार जीवन बिताते हैं (जैसे खेतिहर, कुली मज़दूर आदि श्रमिक वर्ग) उनका स्वास्थ्य बिना व्यायाम के ही शिक्षितों से लाख दर्जे अच्छा है। हाँ पुराने ज़माने के श्रमिकों से कहीं गये गुजरे इस लिये हो रहे हैं कि वर्तमान सभ्यता के कुछ अभिशाप उन्हें भी लग गये हैं जैसे—चाय, बीड़ी तथा और कई तरह के नशे। पर श्रमिक वर्ग को भी दिन भर जितनी शक्ति या एनर्जी वे ख़र्च किये होते हैं, उसकी क्षति-पूर्ति के लिये एक विशेष प्रकार के क्षति पूरक व्यायाम की आवश्यकता होती है जिससे उपयुक्त शिथिलीकरण द्वारा उनके टूटे-फूटे सेलों की मरम्मत हो जाय।

तो वर्त्तमान सभ्यता में जब से यह व्यायाम आंदोलन चला है, विशेषज्ञों को एक ऐसी व्यायाम पद्धति की ज़रूरत महसूस हो रही है जो

कम से कम समय में अधिक से अधिक और लाभदायक सिद्ध हो और साथ ही जिससे सब लोग, खासकर पढ़े लिखे लोग जिनको अधिकतर बैठ कर लिखने पढ़ने का काम करना पड़ता है। इनका जीवन इतना व्यस्त रहता है कि व्यायाम के लिये २४ घंटे में १०।१५ मिनट का समय निकालना भी इनके लिये कठिन होता है। और यदि किसी तरह निकाला भी तो साथ ही यह सवाल भी आता है कि व्यायाम ऐसा हलका होना चाहिये कि दिल, दिमाग़ पर कोई नुक़सान या बुरा असर न पैदा हो। क्योंकि सही या ग़लत, विज्ञानविद् आधुनिक डाक्टर यह कहते फिरते हैं कि डँड, बैठक, कुश्ती आदि व्यायामों से दिल पर बहुत ज़्यादा ज़ोर पड़ता है और दिमाग़ पर भी। दिल इन बेचारों (शिक्षितों) का योंही काफ़ी कमज़ोर होता है और चाय, पान, सिगरेट (या बीड़ी ?) तंबाकू या सुंघनी के बिना ये काम ही नहीं कर सकते। ये सभी चीज़ें 'निकोटीन' नामक विष से भरी होती हैं जो दिल और फेफड़ों के लिये घातक हैं। टहलना बड़ी अच्छी कसरत है। इसके बारे में यह दावा किया जाता है कि भारी कसरतों के सभी गुण इसमें हैं पर उनके नुक़सान एक भी नहीं ! पर इसके लिए सुबह-शाम कम से कम घंटे दो घंटे का समय चाहिये, खुला मैदान चाहिये, और ठीक मौसम (यानी बारिश वग़ैरह न हो रही हो) पर ये तीनों चारों बातें किसी एक रोज़ के लिये भी एक साथ नहीं मिल पातीं। तो आख़िर उपाय क्या है ?

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि स्वास्थ्य रक्षा के लिये सब से आवश्यक वस्तु है स्नायु-संस्थानों को मज़बूत बनाना। स्नायु परिवर्धन का सवाल अब गौण हो पड़ा है। उचित व्यायाम वही है जिससे स्नायुओं पर कम ज़ोर पड़े पर उसका भरपूर असर स्नायु-संस्थानों पर हो।

पर विज्ञान विशारदों का एक मुख्य सिद्धांत यह भी है कि स्नायु संस्थानों का ठीक हालत में रहना श्वसन क्रिया पर निर्भर करता है। यानी, जिसकी श्वसन-प्रणाली में किसी वजह से कोई गड़बड़ी आ गई

हो, उसके स्नायु संस्थान ठीक हालत में नहीं रह सकते। वैज्ञानिक अन्वेषणों से यह सिद्ध हो चुका है।

तो यह स्पष्ट है कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये पहले ठीक तरीके पर साँस लेना और बाहर निकालना सीखना होगा क्योंकि विविध स्नायु-संस्थानों में जो कुछ भी मल एकत्रित होता है वह प्रश्वास (सांस बाहर निकालना) द्वारा बाहर फेंका जाता रहता है और श्वास के द्वारा विशुद्ध रक्त का संचालन स्नायु-संस्थानों में होता रहता है। यह आदान-प्रदान प्रतिक्षण शरीर के अंदर होता रहता है और यह क्रिया जिस शरीर की ठीक है वही शरीर नीरोग है।

हम जानते हैं कि किसीं भी व्यायाम द्वारा साँस तेज़ी से आने जाने लगती है यानी विकार तेज़ी से बाहर फेंके जाने लगते हैं और विशुद्ध प्राणवायु (आक्सिजन) के प्रवेश द्वारा स्नायु-संस्थान विरुद्ध रक्त की प्राप्ति द्वारा उत्फुल्ल होने लगते हैं।

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यह क्रिया जितनी ही खुली और साफ़ जगह में होगी उतनाही ज़्यादा फ़ायदा होगा।

व्यायाम के सम्बन्ध में एक अन्वेषण और हुआ है। हम जानते हैं कि हमारे शरीर के अंदर बहुत सी गिल्टियाँ (थाइराइड आदि) हैं, जिनका रस स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव रखता है। इन बड़ी गिल्टियों के सिवा असंख्य छोटी गिल्टियाँ सारे शरीर में व्याप्त हैं, जिन्हें अंग्रेज़ी में 'डक्टलेस ग्लैंड' या अंतः स्त्रवाग्रंथियां कहते हैं। इन ग्रंथियों या गिल्टियों का रस भी शरीर के स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य है। इन अनगिनित छोटों का रस यदि रक्त को नहीं मिल रहा है तो स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। इन ग्रंथियों का जो सूक्ष्म रस रक्त में बराबर मिलता रहता है उसी के अनुसार रक्त सञ्चालन निर्दोष या सदोष हुआ करता है। यानी यदि इन गाँठों का रस काफ़ी पैमाने पर रक्त को नहीं मिल रहा है तो संचालन ठीक नहीं होगा।

तो यह स्पष्ट है कि व्यायाम-पद्धति उत्तम और वैज्ञानिक वही कही जायगी जो—

(१) स्नायु-संस्थानों को दृढ़ तो बनावे पर स्नायुओं पर ज़्यादा ज़ोर न डाले।

(२) श्वास-प्रश्वास क्रिया को ठीक बनावे।

(३) अंतः स्त्रावग्रंथियों का रस उचित परिमाण में रक्त में पहुँचावे।

जो व्यायाम-पद्धति ऊपर कही हुई तीनों बातों को नहीं संभाल सकती वह किसी दूसरे पहलू से भले ही अच्छी हो, पर स्वास्थ्यरक्षा या स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से वह दोष युक्त ही मानी जायगी। यानी उसके द्वारा कुछ दिन के लिये तगड़ी मांशपेशियां, उभड़े हुये पुट्ठे भले ही दिखाई पड़ जायँ पर असल तन्दुरुस्ती से इसका ताल्लुक़ कम है।

एक दूसरी दृष्टि से विचार करने पर यह बात और स्पष्ट हो जाती है। व्यायाम भी एक प्रकार का व्यवसाय या व्यापार है। प्रत्येक व्यवसायी की सफलता इसी एक बात पर निर्भर करती है कि कम से कम लागत पर ज़्यादा से ज़्यादा लाभ हो। व्यायाम भी वही उत्तम कहलायेगा कि जिसके द्वारा शरीर के बाहरी भीतरी सभी कल-पुर्ज़ों की पूरी ओवर-हॉलिंग या मरम्मत हो जाय पर शारीरिक-शक्ति या पूँजी में कमी न हो। कुश्ती या दँड-बैठक वग़ैरह में या फुटबाल, हॉकी आदि खेलों में जितना दम भरता है, जितनी थकान आती है और दिल की धड़कन जितनी बढ़ जाती है, वैसी कोई बात योगिकव्यायाम में नहीं होती, पर लाभ उनसे कहीं ज़्यादा होता है।

आरंभ में दिल की धड़कन कुछ ज़्यादा हो जाती है आसनों के व्यायाम से भी पर अभ्यास हो जाने पर ऐसा नहीं होता, और करने के बाद थकान या ग्लानि की जगह एक विचित्र स्फूर्ति तथा उत्साह शरीर में भर उठते हैं।

आसनों का सब से पहले पृष्ठवंश या रीढ़ और उसके द्वारा मस्तिष्क

पर प्रभाव पड़ता है। रीढ़ तथा मस्तिष्क से निकली हुई नाड़ियों पर ही आसनों का असर पहले पड़ता है। इन नाड़ियों तथा इनकी असंख्य शाखा-प्रशाखाओं में एकत्रित मल को ये पहले दूर करते हैं और अधिक मात्रा में जो रक्त का संचालन होता है, उससे वहाँ के नाड़ी केंद्र और सेल ताजे हो उठते हैं।

भुजंग, शलभ, धनुष, मत्स्यैंद्र आदि आसनों से रीढ़ की सारी हड्डियों का व्यायाम हो जाता है और वहाँ के सब सेल नया ख़ून पाकर स्वस्थ हो उठते हैं।

शीर्ष, सर्वाङ्ग और विपरीतकरणी से मस्तिष्क के अंदर की सारी नाड़ियों का व्यायाम हो जाता है और इनके द्वारा वहां के सारे घटक (रक्तकोष) स्वस्थ और सबल हो उठते हैं।

साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि व्यायाम का एक मात्र उद्देश्य अंग-प्रत्यंग को थकाना या परिश्रम कराना ही नहीं होना चाहिये, जैसा कि अधिकतर व्यायाम-पद्धतियों द्वारा होता है। वैज्ञानिक तथा आदर्श व्यायाम-पद्धति के दो लक्ष्य होते हैं:—एक तो कुछ विशेष अंगों को उपयुक्त श्रम देना और दूसरा यह कि साथ ही साथ कुछ दूसरे अंगों को उचित मात्रा में विश्राम मिले यानी उनका शिथिलीकरण होता चले। यह दोनों क्रियायें एक साथ होती चलें ऐसा एकमात्र योगिक व्यायाम पद्धति में ही संभव है ऐसा वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है। उदाहरणार्थ-शीर्षासन तथा सर्वाङ्ग आसन द्वारा जब मस्तिष्क के अंदर की नाड़ियों तथा उनसे संबद्ध केंद्रों का जब व्यायाम होने लगता है उसी समय रीढ़ की नाड़ियों तथा उनसे मिले हुये केंद्रों को आराम भी मिलना शुरू हो जाता है। व्यायाम और शिथिलीकरण (रिलेक्सेशन) इन दोनों क्रियाओं का उचित सामंजस्यपूर्ण मेल (बैलेंस) जिस पद्धति में हो और साथ ही जिसके करने में शारीरिक शक्ति या पूंजी कम से कम लगे वही आदर्श और वैज्ञानिक मानी जायगी।

वैज्ञानिक व्यायामपद्धति का लक्ष्य एक बात की ओर और रहता है और वह है श्वसन क्रिया और उसका नियंत्रण। यह तो सभी जानते हैं कि कोई भी कसरत या खेल से श्वसन क्रिया बढ़ जाती है यानी आदमी तेज़ी से साँस लेने लगता है या हाँफने तक लगता है। और प्रायः इसका फल यह होता है कि कसरत ख़तम होने पर थक जाता है या उतना ही शून्य हो पड़ता है। यह न होना चाहिये। श्वसन क्रिया बढ़ना तो ठीक है पर उतना ही कि इसकी प्रतिक्रिया जब होने लगे तब आदमी अपने को पहले से ज़्यादा ताज़ा और उत्साह तथा स्फूर्ति से भरा हुआ पावे। एक घंटा कसरत का नतीजा यह न हो कि दिन भर आराम करने की ज़रूरत मालूम हो। होना यह चाहिये कि १५-२० मिनट कसरत करने से दिन भर ख़ुशी ख़ुशी अपना काम करने का उत्साह तथा स्फूर्ति प्राप्त हो; हाँफ न छूटे, और न पस्त होकर पड़े रहने की आवश्यकता प्रतीत हो। यह यह तो होता ही है साथ ही श्वास, प्रश्वास क्रिया को ठीक करना और उस को अपने वशीभूत तक कर डालना यह तो योगिक व्यायाम का विशेष क्षेत्र है। बल्कि विशेष क्षेत्र क्यों ऐसा कहना चाहिये कि यह एकमात्र योगिक क्रियाओं द्वारा ही संभव है।

श्वास-प्रश्वास के अतिरिक्त एक व्यापार और है जिसको सँभालना और ठीक अवस्था में रखना आदर्श या वैज्ञानिक व्यायाम पद्धति का लक्ष्य होना चाहिये और वह है विसर्जन या उत्सर्ग क्रिया। शरीर यंत्र के अंदर दो क्रियायें बराबर होती रहती हैं और वह हैं परिपाक और विसर्जन (एसीमिलेशन तथा एलिमिनेशन) यानी जो कुछ हम खाते पीते हैं उस का रस रक्त आदि में परिवर्तन तथा अवशिष्ट अंश का मल मूत्र आदि के रूप में उत्सर्ग। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह शेषोक्त क्रिया पहली से कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। जो व्यायाम पद्धति इस विसर्जन या उत्सर्ग क्रिया में हमें सहायता नहीं पहुँचाती उसे हम वैज्ञानिक न कहेंगे।

हम पहले कह चुके हैं, कि पश्चिमोत्तान, पादहस्त मयूर तथा शलभ आदि आसन विशेष कर इस उत्सर्ग क्रिया को शुद्ध करते हैं।

अंत में हम यह भी कह देना चाहते हैं कि उक्त दोनों ही क्रियाओं के संबंध में आसनों की उपादेयता वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में सिद्ध की जा चुकी है और यह बात प्राच्य तथा पाश्चात्य सभी देशों के वैज्ञानिक व्यायाम विशारद, डाक्टर तथा आहार विशेषज्ञ एक स्वर से स्वीकार कर चुके हैं। अब वैज्ञानिक तथा आदर्श व्यायाम के रूप में आसनों के संबंध में संदेह करने की गुंजायश नहीं रह गई है।

शरीर और मन दोनों को पूर्णतः स्वस्थ अवस्था में रखने के लिये जितने और जिस प्रकार के व्यायाम की आवश्यकता हमको है, वह हमको इन योगिक आसनों द्वारा ही मिल सकता है।

आसन तथा श्वास-संस्थान

श्वास-प्रश्वास की क्रिया के साथ आसनों के व्यायाम का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इसके सम्बन्ध में विशेष रूप से कुछ जानना आवश्यक है। सब से पहले हम को जान लेना चाहिये कि श्वास का अर्थ ही है जीवन। पर हम में से अधिकांश लोग ठीक रीति से साँस लेने या बाहर फेंकने का ढंग नहीं जानते। ये आसन सब से श्वास-संस्थान को ठीक करते हैं फिर और कुछ। इनकी एक खास खूबी यही है कि शरीर यंत्र के अंतर्गत जो संस्थान जितना ही अधिक महत्वपूर्ण है उसी के सुधार की ओर इनका असर पहले होता है।

अब यहां पर हमें श्वास क्रिया और संस्थान क्या हैं और शरीर के किन-किन अवयवों से यह क्रिया होती है यह स्पष्ट करना है। हम कह चुके हैं कि शरीर में मस्तिष्क के समान ही या उसके बाद ही सब से महत्व-

पूर्ण अंग हृदय और फुसफुस यानी दिल और फेफड़े हैं। जिसका 'दिल और दिमाग़' ठीक है उसकी तन्दुरुस्ती ठीक है। हम आगे चल कर देखेंगे कि दोनों के उचित व्यापार परस्पर संबद्ध तथा अन्योन्याश्रित भी हैं। यानी एक अगर बिलकुल ठीक काम कर रहा है तो दूसरा बहुत ग़लत नहीं हो सकता। पर पहले हमें यह समझ लेना है कि दिल और फेफड़ों का काम क्या है।

दिल का जो काम है वह फेफड़े से अटका हुआ है। दिल की धड़कन से रक्त की धाराएं सारे शरीर में पहुँचती हैं और फेफड़े का काम यह है कि जो रक्त शरीर के काम में लग चुका है उसे फिर से नवीनं और स्वच्छ कर दे। इसी रक्त की धाराओं में ही हमारे शरीर के प्रत्येक भाग के आहार से भरी नावें चलती रहती हैं। और रक्त की प्रधान धारा हृदय से आरम्भ होते ही पहले तो मस्तिष्क की ओर चलती है और इसकी एक दूसरी शाखा शरीर के अन्य भागों की ओर। दिल से निकलते ही उस खून की नहर की दो शाखें हो जाती हैं। और ज्यों-ज्यों ये आगे बढ़ती हैं इनकी अनगिनित शाखा-प्रशाखाएँ बनती चलती और शरीर के प्रत्येक भाग को नवीन रक्त पहुँचाती रहती हैं। और यह क्रिया होने के बाद फिर ख़ून दिल की ओर दौड़ता है और ज्यों-ज्यों वह दिल के करीब होने लगता है उस नहर की शाखें कम होने लगती है। अंत में फिर एक ही नहर में परिवर्तित हो कर वही ख़ून दिल के एक दूसरे खाने में वापस आ जाता है। पर इस लौटाये हुये ख़ून में से खाये हुये आहार का सब रस निकल कर शरीर में पवस्त हो चुका रहता है और कारबन दी आक्साइड की मात्रा बहुत बढ़ जाती है जिसके कारण हमें थकान जान पड़ती है और यही मात्रा यदि बहुत बढ़ जाय तो आदमी की मृत्यु तक हो सकती है।

यही कारबन दी-आक्साइड भरा हुआ ख़ून हमारे फेफड़ों में पहुँचता है जहां हमारे सांस बाहर निकालने की क्रिया द्वारा इसका एक बहुत बड़ा

भाग बाहर निकल जाता है। फिर जब हम सांस लेते हैं जिस अनुपात में बाहर की हवा साफ़, ताज़ी और तर होगी उसी अनुपात में आक्सीजन (प्राण-रक्षक वाष्प) ज़्यादा और कारबन दी आक्साइड कम हमारे फेफड़ों में भरेगी और हमारा रक्त फिर से नवीन और स्वच्छ हो दिल के एक तीसरे खाने में लौट जायगा और फिर अपना नया चक्कर शरीर की नाड़ियों में लगाना शुरू कर देगा। जो कुछ भी खाते पीते हैं उसका रस अंतड़ियों में से होता हुआ यह ख़ून अपने में मिलाता (एसीमिलेट) चलता और शरीर के जिस भाग को जिस रस या खुराक की ज़रूरत होती है वह उसको पहुँचाता चलता है।

अब इस ऊपर के कथन का सारांश यह निकला कि शुद्ध ताज़ी हवा में ठीक तरीक़े से साँस लेने पर और अच्छा भोजन पान (जिससे अच्छी किस्म का रस बन कर रक्त में मिलता चले) पर ही स्वास्थ्य निर्भर करता है।

स्वास्थ्य के लिये खाना पीना क्या और कैसा होना चाहिये यह यद्यपि इस पुस्तक का मुख्य विषय नहीं है, हम संक्षेप से अगले अध्याय में कुछ बातें कहेंगे। पर सब से अधिक श्वसन क्रिया निर्दोष होनी चाहिये। कुछ भाग्यवान लोगों को कुदरती तरीक़े से जन्म से ही उचित रीति पर साँस लेने का ढङ्ग ज्ञात रहता है। उनके बारे में हमें कुछ नहीं कहना है। दूसरे वर्ग के बहुत से लोग ऐसे हैं जो अपनी जीविका या कामकाज की वजह से ही खुले मैदान की ताज़ी हवा में गहरी साँस लेने के लिये मजबूर हैं जैसे खेतों में मिहनत करने वाले किसान आदि। दिन का अधिकांश भाग वे निर्मल आकाश के नीचे मुक्त वायु का सेवन करते हैं। इस वर्ग के बारे में भी कोई खास झंझट नहीं है।

उक्त दोनों के अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग है, जिसके प्राणी न तो जन्मना स्वाभाविक रीति से सांस लेना जानते हैं और न जीविका उपार्जन के लिये उन्हें खेतों में ही जाना पड़ता है। ये हैं शहरों के रहने वाले

वे लोग जिनके मकान प्रायः मैली कुचैली गलियों में होते हैं और जो दिन भर किसी दफ़्तर आदि के कमरे में बैठ कर (प्रायः दिन में भी बिजली की बत्ती जला कर) काम करते हैं। इनके फेफड़ों में साफ़ ताज़ी हवा कभी घुस ही नहीं पाती जिसके द्वारा ये फेफड़ों में आई हुई कारबन-दी-आक्साइड को बाहर निकाल सकें। इस वर्ग में कई स्तर के लोग होते हैं। कुछ लोगों को सौभाग्य से अपेक्षाकृत खुले स्थानों में, बँगलों में, पार्क के समीप या ऐसी ही किसी जगह रहने का सुयोग मिल जाता है, पर जीविका के लिये, पढ़े लिखे शहर निवासी को दिन का अधिकांश भाग किसी कमरे में बैठ कर दफ़्तर या दुकान का काम करते हुये ही बिताना पड़ता है। इस वर्ग के सभी लोगों को स्वास्थ्य रक्षा के निमित्त ठीक ढङ्ग से सांस लेने और निकालने का अभ्यास करना अनिवार्य है। आदत डालकर श्वास-प्रश्वास क्रिया सीखने के सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है। कारण स्पष्ट है।

विज्ञान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि बहुत सी बीमारियां ख़ास कर यक्ष्मा, तपेदिक या "टी० बी०" आदि फेफड़ों या दिल से संबंध रखने वाली बीमारियों के कीटाणु साँस ही के जरिये शरीर में घुसते हैं। और यह भी प्रयोगशालाओं में सिद्ध हो चुका है कि स्वस्थ आदमी के फेफड़ों में भी इन भयानक रोगों के आठ-दस हज़ार कीटाणु मिलते हैं। अंतर केवल यही है कि जो लोग ठीक से सांस लेना जानते हैं और उचित व्यायाम द्वारा फेफड़ों में एकत्रित दूषित वायु को निकाल देने की क्रिया जिसको सिद्ध है उनपर उन कीटाणुओं का कोई असर नहीं होता। साथ ही जिसका खानपान ठीक है जिसके फल से रक्त में एक दूसरी जाति के शरीर रक्षक कीटाणु पर्याप्त संख्या में विद्यमान हैं उसका तो कहना ही क्या।

यहाँ पर हमारा मतलब केवल यही है कि प्रतिदिन नियम से जो थोड़ा सा समय (१०/१५ मिनट ही सही) ऐसे व्यायाम में लगाता

चले जिससे फेफड़ों की ऐसी हरकत हो जाया करे कि वहाँ पर एकत्रित वायु और विजातीय द्रव्य दूर हो जाय और २४ घंटे के लिये श्वास-प्रश्वास क्रिया सही हो जाय उसे यह बीमारियाँ अपना शिकार न बना सकेंगी। क्योंकि प्रकृति ने हमारे फेफड़े और दिल किसी दूसरे ही पैमाने पर बनाये थे। क्या आजकल का सभ्य सुशिक्षित मनुष्य उस आदमी की कल्पना कर सकता है, जो भारी भरकम जिरहबख़्तर पहने हुये पैदल या घोड़े पर सुबह से शाम तक तलवार, फरसा, बल्लम या वजनी गुर्ज चला सकता था। फेफड़े हमारे आज भी वही हैं, पर दिन भर मकानों के अंदर, कारखानों में या दूकानों में बैठ-बैठ कर हमने उनको निकम्मा कर डाला। इस तरह के कृत्रिम और अस्वाभाविक जीवन के लिये हमारे फेफड़े ज़रूरत से ज़्यादा बढ़े हैं। हम अपने फेफड़ो के कुछ भाग से कोई काम ही नहीं ले पाते इस अस्वाभाविक रहन-सहन के अभिशाप से। और यह मानी हुई बात है कि शरीर के जिस भाग से काम नहीं लिया जाता वह बेकार हो जाता है। तो उपाय क्या है? उचित व्यायाम और कुछ नहीं।

इसका सब से सच्चा उपाय तो यह होता कि साँस निकालते समय हम फेफड़े के अंदर की सारी हवा बाहर निकाल सकते और फिर साँस खींचते समय जो कुछ हवा हम फेफड़ों में भरते वह समूची ताज़ी हवा होती। पर यह संभव नहीं है किसी के लिये भी। भरपूर कोशिश करने पर भी कम से कम एक लीटर हवा फेफड़ों में रही जाती है। और यह जो हवा फेफड़ों में बँची रहती है उसे हम निर्दोष तभी रख सकते हैं जब कि ठीक तौर से गहरी साँस लेने और ख़ास कर निकालने के आदी हों। हम अभी देखेंगे कि ठीक तौर से साँस को बाहर निकालने का ढंग जानना कितना महत्वपूर्ण कार्य है स्वास्थ्य की दृष्टि से।

जो हवा हम साँस अंदर खींचते हैं उसे नाइट्रोजन के सिवा १८ और २० फ़ीसदी ऑक्सीजन; तथा ०·०४ फ़ीसदी कारबन-डी-ऑक्साइड होती है, पर साँस निकालने में १६·०३ फी सदी ऑक्सीजन और ४·२८ फ़ी

सदी कारवन डी आक्साइड हम बाहर फेंकते हैं। स्पष्ट है कि कभी-कभी आक्सीजन की कमी ही नहीं कारवन डी आक्साइड की ज़्यादती के वजह से साँस में गड़बड़ी या कोई फेफड़े का रोग पैदा हो जाता है जो अगर घर करने पाया तो घातक सिद्ध हो सकता है।

जितने आसनों का ब्योरा ऊपर दिया उन सभों का पहला लक्ष्य होता है फेफड़ों में जमी हुई दूषित हवा को बलात् बाहर निकाल फेंकना और इस प्रकार फेंकना कि दिल या फेफड़ों पर ज़्यादा ज़ोर और दबाव न पड़े। फिर आसनों के सिवा जितने प्रकार के प्राणायम हैं वे सब वास्तव में साँस की कसरतें ही हैं। हमारे पुराने ऋषियों ने इस विद्या को इतना आगे बढ़ाया कि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रहते हुये; आध्यात्मिक शक्ति का भी पूरा विकास करते हुए मनुष्य सब प्रकार की सिद्धियां प्राप्त कर जरा-व्याधि तथा मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर सकता है।

तो यौगिक व्यायाम—आसनों तथा प्राणायामों के दो पहलू हैं—एक शारीरिक और दूसरा आध्यात्मिक। यानी पहले तो इन से शरीर नीरोग, मन शुद्ध होता है और फिर ऊँचे दर्ज़े की सिद्धियों का नंबर आता है। हमारा उद्देश्य पहले इस पहली मंज़िल को तय करने का ही है, क्योंकि पहली सीढ़ियां पार किये बिना छत पर जाना कैसे संभव होगा?

सांस का नाम ही यौगिक भाषा में 'प्राण' (प्राणवायु) है। इस को काबू में लाने में कमाल कर दिखाया है भारत के पुराने योगियों ने। इनकी तालीम का श्रीगणेश यों होता है कि पहले सांस हमेशा नाक से लेना सीखो, मुँह से सांस कभी न लो। मुँह से सांस लेने की आदत बहुत ख़राब है। आसनों तथा प्राणायामों का ढंग ही कुछ ऐसा है कि थोड़े ही दिन अभ्यास करने के बाद मुँह से सांस लेने की आदत छूट जाती है। पहली सीढ़ी यों तय होती है।

दूसरी सीढ़ी यह है कि गहरी या लंबी सांस लेने की आदत सी डाल ली जाय और बाहर सांस निकालने में हमेशा सांस खींचने से ज़्यादा समय

लिया जाय। अगर ज़्यादा नहीं तो कम तो किसी हालत में न होना चाहिये। क्योंकि सांस निकालने में जितना ही ज़्यादा समय लिया जायगा उतनी ही ज़्यादा वह विषाक्त वायु—कारबन डी ऑक्साइड—फेफड़ों से बाहर निकाल दी जायगी और फिर अगले निःश्वास में शुद्ध ताज़ी हवा फेफड़ों में भर कर रक्त को ताज़ा करेगी।

हमारे ख़ास-ख़ास जितने आसन हैं वे यदि शुद्ध तरीक़े से किये जायं तो यह दूसरी मंजिल भी आसानी से तय हो जाती है। शलभ मयूर, हल, पश्चिमतान, मत्स्य, अर्धमंत्स्येंद्र आदि जितने मुख्य आसन हैं उनको ध्यान से देखने से स्पष्ट हो जायगा कि उनका मकसद है शरीर को हर तरफ़ हद दर्ज़े तक मोड़ने की आदत डालना। और मोड़ते समय शरीर जब आगे की ओर झुकाया जाता है तो सांस बाहर फेंकी जाती है। आसनों का नियम ही ऐसा है। बाहर झुकने में हमेशा ज़्यादा समय और ज़्यादा ज़ोर भी लगाना पड़ता है, और पहला नियम ही यही है कि शरीर बाहर झुकाते समय सांस को बाहर फेंकना। इन आसनों को करते करते फिर कुछ समय बाद आदत सी पड़ जाती है।

———

आसनव्यायामी का भोजन

बहुधा लोग भूल से यह कहते हैं कि खाने को तर माल तो मयस्सर नहीं है कसरत काहे से करें। अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि जिनको पर्याप्त मात्रा में घी, दूध, मलाई, रबड़ी, खोवा, बादाम या गोश्त नहीं मिल सकता उनको कसरत न करना चाहिए। साथ ही यह भी उनकी धारणा होती है कि यदि भरपेट इन चीज़ों को खाये बिना कसरत की जाती है तो भयंकर हानि हो सकती है।

सत्य का कुछ अंश इन धारणाओं में अवश्य है; पर अधिकांश में उक्त विश्वास निर्मूल हैं। हम कह चुके हैं कसरत दो प्रकार की होती है—एक पहलवानी के लिये, दूसरी स्वास्थ्यरक्षा के लिये। पहलवानी या एकमात्र शरीर-चर्या की दृष्टि से जो कसरत की जाती है उसके लिये अवश्य पर्याप्त मात्रा में अपनी-अपनी पाचनशक्ति के अनुसार पौष्टिक खाद्य न मिलने से हानि हो सकती है। पर स्वास्थ्य-रक्षा के लिये १०-१५ मिनट आसन, प्राणायाम करने वाले के लिये वह तर माल अनिवार्य या ज़रूरी नहीं है।

और फिर अधिकांश लोग एक और बड़ी भारी ग़लतफहमी में अभी तक पड़े हुये हैं। वह जानते नहीं 'पौष्टिक खाद्य' किसे कहते हैं। ऊपर जिन चीज़ों के नाम हमने गिनाये हैं वही एकमात्र 'पौष्टिक' आहार में दाख़िल हैं यह कहना भयानक भूल है। आहार-तत्व के संबंध में जो आधुनिक खोजें हुई हैं उनसे यह सिद्ध हो गया है कि ये चीज़ें जिन्हें लोग 'पौष्टिक' कहते हैं बहुधा लाभ के स्थान पर हानिकारक होती हैं। ये सभी भारी और गरिष्ठ हैं। यद्यपि नई जवानी में पता नहीं चलता, पर अवस्था गिरने पर इनके आदी लोगों का हाज़मा बिल्कुल निकम्मा हो जाता है। यही कारण है कि अधिकांश पहलवान दीर्घायु नहीं होते और जो होते भी हैं उनकी बुढ़ापे में बड़ी दुर्दशा होती है। संग्रहणी या

गुल्म आदि कोई उदर-रोग या वायु-रोग घेरे रहता है और फिर जवानी में ज़्यादा कसरत किये रहने के कारण अधेड़ या बुढ़ापे में उनके अंग-अंग जकड़े रहते हैं, मोड़ने की शक्ति ही मारी जाती है। हमने ऐसे भी पहलवान देखे हैं जिनको जाड़े में खड़े-खड़े पाखाना करना होता है। वे बैठ सकते ही नहीं!

वास्तव में स्वास्थ्य और विशुद्ध रक्तधारा के लिये ताज़े फल और हरी शाक-सब्जियाँ, जिन्हें हमारे पहलवान 'घास-पात' कहते हैं, उनके तथा-कथित तर माल से कहीं अधिक उपकारी और स्वास्थ्यप्रद हैं और दीर्घ काल तक हज़म की जा सकती हैं। दुर्बल पाचनशक्ति वाले भी इन्हें आसानी से और बुढ़ापे तक हज़म कर सकते हैं। पर हम यह नहीं कहते कि हमें दूध घी आदि की ज़रूरत ही नहीं है। शरीर-रक्षा के लिये कई प्रकार के तत्वों की आवश्यकता होती है और किस तत्व की कितनी मात्रा में ज़रूरत है यही जानना पहला कर्त्तव्य है। आहार सामग्रियों में एक संतुलन या सामंजस्य होना चाहिये। आदर्श आहार का नियम यह होना चाहिये कि उसमें ८० प्रतिशत क्षारीय और २० प्रतिशत अम्ल द्रव्य रहें; क्योंकि समस्त आहार क्षारीय (अल्कलाइन) और अम्ल (एसिड) दो भागों में विभक्त हैं। अम्ल पदार्थ की औसत २० प्रतिशत से अधिक होने से ही उत्तम रक्त नहीं बन पाता और संस्थानों में कोई न कोई गड़बड़ी शुरू हो जाती है। आधुनिक खोजों से यह स्पष्ट हो गया है कि सभी तरह के मांस, मछली, मुर्गी वग़ैरह, सफ़ेद आटे की रोटी, पूरी या मैदे की चीज़ें सब तरह के कड़े सूखे मेवे – जैसे अखरोट, बादाम, काजू तथा मटर, सेम वगैरह अम्ल या खटाई पैदा करने वाले हैं। शराब, चाय, कहवा आदि में इस खटाई की मात्रा बहुत अधिक है।

इसके विपरीत सभी तरह के ताज़े फल और हरी तरकारियों से ख़ून में खारापन पैदा होता है। दूध, मक्खन, अंडे की ज़रदी, छिलके सहित दालें, चोकरदार आटा—ये सब खारापन पैदा करते हैं।

पर इसके सिवा भोजन में एक बात और देखनी होती है। काम-काज में व्यस्त रहने वाले स्वस्थ मनुष्य को दिन भर की मिहनत से खोई हुई शक्ति की क्षतिपूर्ति करने के लिये प्रोटीन और चर्बी की भी ज़रूरत पड़ती है। प्रोटीन वह शरीरतत्व है जो शरीर में मांस की वृद्धि करता है और खोये तथा टूटे-फूटे तंतुओं का पुनः निर्माण करता है। बसा, चर्बी या चिकनाई वह तत्व है जो शरीर के गड्ढों को भरता है और मोटा ताज़ा बनाता है।

यों तो श्वेतसार पदार्थ सभी तरह के अन्न—जैसे, गेहूँ, जौ, चावल, मकई, बाजरा आदि में पाया जाता है, पर इनमें गेहूँ का स्थान प्रथम इसलिये है कि इसके चारों ओर लसदार आटे की एक तह होती है। शरीर में गर्मी और फुर्ती पैदा करने के लिये यह बड़ी ज़रूरी चीज़ है। इसमें फास्फेट तथा अन्य खनिज लवण भी हैं जो शरीर-रक्षा के लिये आवश्यक हैं। गेहूँ के अंकुर में विटामिन बी है और इसका चोकर पेट साफ़ करने में मदद देता है। इसलिये चोकरदार घर की चक्की में पिसे हुये गेहूँ के आटे की रोटी को ही मुख्य आहार के रूप में ग्रहण करना चाहिये।

प्रोटीन और चर्बी के लिये सबसे अच्छी चीज़ें हैं—दूध, मक्खन, मठा, दही आदि। छिलकेदार दालों में भी प्रोटीन काफी होता है। पर दाल-जाति के प्रोटीन से दूध-जाति के प्रोटीन आसानी से हज़म होते हैं और साथ ही उनमें चूना, लोहा विटामिन तथा अन्य खनिज लवण होते हैं जो हड्डियाँ, दाँत तथा दिमाग़ को ताक़त देते हैं।

मांस में प्रोटीन बहुत ज़्यादा होता है, पर इसमें हानियाँ भी बहुत अधिक हैं। जिस समय जानवर मारा जाता है उस समय वह अत्यंत भय और घबराहट की अवस्था में रहता है जिससे उसके शरीर में तेज़ ज़हर फैल जाता है। बहुत से जानवर ऐसे भी होते हैं जो गलीज़ खाते हैं। और फिर पकाया हुआ मांस शरीर में बहुत जल्द सड़न पैदा करता है जो

अन्न के विष से कहीं अधिक घातक सिद्ध होता हैं और फिर प्रकृति ने मनुष्य को मांसभोजी जीव के रूप में नहीं बनाया है। इन कारणों से यह स्पष्ट है कि भोजन के रूप में मांस को न लेना ही ठीक है और फिर मांस से जो प्रोटीन हमें मिलता है वह जब हमें बादाम आदि सूखे फलों से ही प्राप्त हो सकता है जिनमें मांस के गुण तो हैं. पर हानियां नहीं हैं, फिर क्यों हम इस जघन्य और नृशंसतापूर्ण भोजन के आदी बनें और जीव-हत्या में सहायक हों।

आसन व्यायाम से हठयोग का विशेष संबंध है। शारीरिक व्यायाम के सिवा इसका एक आध्यात्मिक महत्व भी है जो उपेक्षणीय नहीं है और उसकी पहली सीढ़ी है काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि पाँच मुख्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना। सात्विक भोजन (फल और शाक प्रधान) तथा आसन प्राणायाम की क्रियायें इन पर विजय प्राप्त करने में सहायक होती हैं। मांसभोजी कभी उतना दयापूर्ण तथा सहृदय नहीं हो सकता। ख़ास बात यह है कि ख़ुद जानवर को मार कर उसका रक्त देखने का साहस अधिकांश मांसभोजी में नहीं होता और ऐसे मांसभोजी ही चिकवा या 'कसाई' नामक एक विशेष वर्ग की उत्पत्ति के लिये उत्तरदायी हैं जो अपनी नृशंसता के लिये बदनाम हैं। अस्तु

आधुनिक आहार-शास्त्र हमें बताता है कि समस्त भोजन-पान में यदि हम ८० प्रतिशत खारापन और ज़्यादा से ज़्यादा २० प्रतिशत खटाई पैदा करने वाले खाद्य पदार्थों का अनुपात रक्खें तो हमें कभी कोई शिकायत न हो। लोग भूल यह करते हैं कि खाते समय इस अनुपात और संतुलन का कोई ध्यान नहीं रखते और अंधाधुंध जो चीज़ ज़बान को अच्छी लगी (जैसे मिठाइयाँ, पूरी पक्वान आदि) उसी को ज़्यादा खाते चले जाते हैं।

हमें यह जान लेना चाहिये कि बाज़ारों में बनने वाली मिठाइयाँ, पक्वान, चाट, टीन के डब्बों में बाहर से आने वाले अधिकतर खाद्य,

बिस्कुट केक आदि—ये सभी खटाई बढ़ाने वाले खाद्य हैं और आमाशय में ठीक हज़म न हो कर सड़न पैदा करते हैं।

और फिर हमें यह भी अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि किसी चीज़ का अच्छा लगना या न लगना आदत पर निर्भर करता है। लेखक भी एक समय पूरी, पकान का प्रेमी था, पर अब कच्ची साग सब्ज़ी और फलों के सलाद में उसे कहीं अधिक आनन्द आता है।

हमारे कहने का मतलब यह नहीं कि हमारे शरीर-संस्थानों को शर्करा या मिठाई की ज़रूरत नहीं है। गर्मी और शक्ति के लिये हमें शर्करा चाहिये, पर वह शर्करा सफ़ेद चीनी और बनस्पति घी से बनी बाज़ारू मिठाइयों से लेना स्वास्थ्य के लिये घातक है। खजूर, अंजीर, किशमिश, मुनक्का आदि फलों से हमें विशुद्ध ६० से ८० फ़ी सदी तक चीनी मिल सकती है। और फिर सफ़ेद चीनी में तो गर्मी के सिवा दूसरा कोई तत्व ही नहीं रह जाता। उससे तो लाल शक्कर (मँगरा खाँड या कच्ची शक्कर) तथा ताज़ा गुड़ लाख दर्ज़े अच्छा है। गुड़ सचमुच अच्छी चीज़ है।

अब हम नीचे आदर्श भोजन के कुछ योग और अनुपात देते हैं—

एक स्वस्थ मनुष्य के लिये २४ घंटे में करीब २४ छटाँक (१½ सेर) भोजन काफ़ी है। और इसमें खाद्य द्रव्यों का अनुपात इस प्रकार होना चाहिये:—

१२ छटाँक ताज़े फल तथा साग सब्ज़ी।
८ ,, दूध
२½ ,, अन्न
१½ ,, बसा या चर्बी
१ ,, सूखे फल

पर यह आदर्श पालन करना कठिन है। साथ ही भोजन के सम्बन्ध में एक मुख्य सिद्धांत यह भी है कि जो भोजन जिसके मुआफिक पड़े वही उसके लिये सब से अच्छा है। एक ही चीज़ एक के लिये अमृत और

दूसरे के लिये विष हो सकती है। यहाँ पर कुछ साधारण नियम ऐसे दिये जा रहे हैं जो प्रायः सभी के लिये ठीक पड़ेंगे —

(१) आहार की मात्रा यथा संभव कम रक्खो। थोड़ी भूख हमेशा बनी रहे। इससे भी अच्छा एक समय केवल फल खाकर रहना।

(२) कई तरह की चीज़ें एक साथ खाना ठीक नहीं।

(३) खाने के साथ जल न पीओ। खाने के दो घंटे बाद और सुबह सोकर उठने के बाद खुल कर १।२ गिलास जल पिओ।

(४) दालें कम खाओ और साग सब्ज़ी ज़्यादा। ४० के ऊपर वालों को दाल बहुत कम खाना चाहिये। रात को चावल न खाओ।

(५) रात का भोजन भरसक हल्का रक्खो।

(६) कब्ज़ियत या कमज़ोर हाज़मा वालों को दाल, आलू, भाँटा और प्याज़ से बचना चाहिये।

(७) चाय, क़हवा, धूम्र-पान (सिगरेट, बीड़ी) पान की तंबाकू, सुंघनी—ये सभी ख़राब चीज़ें हैं।

(८) भरसक सुबह कोई नाश्ता न करो। खास कर यदि १० बजे ही खाना खाकर काम करने जाना हो। और यदि नाश्ता कुछ करना ही हो तो रात को पानी में भिगोये हुये १ छटाँक किशमिश या मुनक्के का रस ले सकते हैं। जवान और मिहनत का काम करने वाले धारोष्ण दूध ले सकते हैं। पर दूध का सब से अच्छा समय ४ बजे शाम है। रात को सोते समय दूध की आदत ठीक नहीं। खाने में और दुग्ध-पान में कम से कम २।३ घंटे का अंतर होना चाहिये। खाने के साथ रोटी या भात दूध से खाने की आदत अच्छी नहीं है। मट्ठा दोपहर के खाने के आधा घंटा बाद ले सकते हैं। दही को खाने के साथ सलाद या रायते के रूप में ले सकते हैं।

(९) दोपहर के भोजन में पहले कच्ची साग सब्ज़ी का सलाद (मूली गाजर, काहू, शलजम, चुकंदर, टमाटर, नींबू, इनमें तीन चार एक

साथ हों, पर चुकंदर उबाल कर मिलाना ही ठीक होता है); फिर रोटी तरकारी, दाल और अंत में दही का सलाद (जिसमें संतरा, केला, अनार, सेब तथा कुछ शक्कर मिली हो) या कोई मीठा सूखा फल या थोड़ा गुड़ या लाल शक्कर लेना आदर्श भोजन है।

(१०) रात में सलाद नहीं ठीक पड़ते। रोटी और कोई एक तरकारी और कुछ सूखे फल; या दलिया और साग या दलिया—दूध या सूखे फल और दूध या खीर; बस यही काफी होते हैं।

(११) खाने की चीज़ों को यथा संभव बदलते रहो। किसी भी एक चीज़ का आदी बनना ठीक नहीं।

हम कह चुके हैं कि पूरे भोजन में श्वेतसार खाद्य ८० और खटाई पैदा करने वाले पदार्थों की औसत २० प्रतिशत होनी चाहिये। अब हम जानकारी के लिये नीचे दोनों की एक सूची देते हैं :—

श्वेतसार या खारापन पैदा करने वाले खाद्य, छिलकेदार तरकारियाँ, कनादार अरवा चावल, चोकरदार आटा। छिलके सहित साबूत गाढ़ी दाल, कच्चा ताज़ा धारोष्ण दूध, सभी मीठे और ताजे फल, और वे सूखे फल जो पकने पर मीठे होते हैं, जैसे—किशमिश, मुनक्का, अंजीर खुमानी, खजूर छोहारा आदि; मट्ठा, दही, घी, मक्खन, गुड़, शहद।

अम्ल पैदा करने वाले पदार्थ

बेछिलके की तरकारियाँ, ख़ासकर आलू, कटहल, अरवी, कोंहड़ा, वंडा, सेम, लोनिया आदि, बे-कने का महीन चावल, भुजिया चावल, बे-चोकर का आटा या मैदा, बेछिलके की पतली दालें, औटाया और मीठा पड़ा हुआ दूध, माँस, मछली, अंडे, पूरी, मिठाई, पकवान सूखे मटर, खटाई, अचार, सिरका, बादाम, अखरोट, चिलगोज़ा, काजू, पिश्ता, मूङ्गफली, सफ़ेद चीनी, मिश्री, शराब, चाय, भाँग आदि।

इनके सिवा एक बात और जाननी चाहिये और वह है खाद्य पदार्थों के मेल। कुछ चीज़ें अकेली तो पच जाती हैं, पर कुछ ख़ास चीज़ों के साथ

खाने से दो में से एक भी नहीं पचतीं और मेदे को ख़राब करती हैं। नीचे बेमेल चीज़ों की सूची दी जाती है —

बेमेल चीज़ें

(१) एक साथ कई चीज़ें, जैसे—रोटी, दाल, भात, घी, दही, गुड़ तरकारियाँ, आचार, चटनी, पकवान, मिठाई, फल, रवड़ी आदि।

(२) मांस-दूध या दूध की बनी कोई चीज़।

(३) रवड़ी, मलाई, मट्ठा—दही।

(४) दालों के साथ फल और चीनी या तरकारियों के साथ फल और मीठा।

(५) दही, केला।

(६) शहद के साथ घी या गर्म तेल।

आदर्श मेल

(१) फल, मीठे—ताज़े या सूखे फल और ताजा दूध।

(२) रोटी या दलिया और हरी उबली हुई भाजियाँ।

(३) संतरे का रस और कच्चा ताज़ा दूध।

(४) रोटी और मक्खन, रोटी और शहद।

इस विषय को अधिक जानने के लिये खाद्य पर लिखी हुई स्वतंत्र पुस्तकें पढ़नी चाहिये[1]। यहाँ पर अंत में हम फिर यही कहेंगे कि प्रत्येक मनुष्य को अपने लिये मुआफिक पड़ने वाली चीज़ों को खोज निकालना चाहिये और उन्हीं को भरसक खाना चाहिये और साथ ही महीने में कम से कम दो तीन दिन उपवास करना चाहिये।

१—जैसे डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह कृत 'क्या, और कैसे खावें ?'

आसन शुरू करने से पहले

आसन व्यायामपद्धति से पूरा लाभ उठाने की इच्छा रखने वालों को आरंभ में ही यह जान लेना उचित है कि इन आसनों के दो पहलू हैं एक कोरा व्यायामात्मक और दूसरा आध्यात्मिक। इस पद्धति का आविष्कार करने वाले ज्ञानी योगियों ने बहुत पहले समझ रक्खा था कि मन के शुद्ध और स्वस्थ हुये बिना शरीर स्वस्थ नहीं हो सकता। यदि मन में शांति, प्रसन्नता, उच्चाकांक्षा तथा आशा आदि सद्भावनाएं नहीं हैं तो कितनी ही कसरत कीजिए आप पूर्ण स्वस्थ नहीं हो सकते। उनका उद्देश्य केवल वृषभ स्कंध, और भारी भरकम सीना मोढ़ा तैयार करना ही भर नहीं था। वे चाहते थे कुंडलिनी का जगाना जिससे मनुष्य अपने दैवी अंश को पहचाने और सब प्रकार की सिद्धियां उसके वशीभूत हो सकें। कुंडलिनी वास्तव में एक ग्लैंड है जो महाप्राचीरा के पास अवस्थित है और सांप की तरह चक्राकार कुंडल मारे हुए अधोमुखी रहती है। योग सिद्ध होने पर यह ऊर्ध्वमुखी और सीधी हो जाती है और तब मनुष्य सारी दुर्वासनाओं के परे होकर रोग-व्याधि पर विजय प्राप्त कर मृत्यु तक को अपनी इच्छा के आधीन कर सकता है।

इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बहुत सी सीढ़ियां, बहुत सी मंज़िलें तय करनी पड़ती हैं जिनमें से आसन एक हैं और जिनका मकसद पहले शरीर को शुद्ध और नीरोग बना कर आगे की सिद्धियों को साधने योग्य बनाना है।

पर आसनों तक पहुँचने के पहले भी दो मंज़िलें तय करनी ज़रूरी बताई गई हैं और उनके नाम हैं :—

यम और नियम

ये कुल सात मंज़िलें हैं जिनके नाम क्रम से हैं—यम, नियम, आसन प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि। समाधि, अवस्था तक पहुँचते

पहुँचते साधक प्राणवायु पर विजय प्राप्त कर और कुंडलिनी को जगा कर मृत्यु को स्वेच्छाधीन करता हुआ इस बात को जान लेता है कि वह ईश्वर का अंशसंभूत (सोऽहं) है या दूसरे शब्दों में 'वह ईश्वर ही है।' योगी को यह धारणा हो जाती है कि 'मैं वही हूँ।' इतना महान् उद्देश्य है इस पद्धति का। और रोग-व्याधि या शारीरिक स्वास्थ्य आदि तो बहुत साधारण बातें हो जाती हैं इसके सामने। और फिर इस संसार में कर्म करते हुए और सांसारिक भोगों को भोगते हुए, माया मोह से निबटते हुये जो जहां तक पहुँच सके। पारिवारिक कर्त्तव्यों में फँसे हुये अधिकांश मनुष्यों को समय या सुयोग नहीं है वहां तक की साधना करने का, पर स्वास्थ्य-मानसिक और शारीरिक सब के लिये काम्य है। इसलिये अधिकांश के लिये आसन प्राणायाम तक सिद्ध करना ही यथेष्ठ माना जायगा।

यम

पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि बिना चित्त को शांत और राग-द्वेष, काम क्रोध आदि शरीर और मन के घोर शत्रु-उद्वेगों पर विजय प्राप्त किये, ये आसन आदि भी अपना पूरा लाभ नहीं दे पाते। इस बात को सभी मानेंगे। शरीर और मन का स्वास्थ्य एक दूसरे पर निर्भर करता है। दोनों एक विशेष सीमा तक परस्पर सापेक्ष हैं। पर मन का दर्ज़ा पहले है। योगियों के अनुसार मन यदि ठीक है तो वह शरीर को भी ठीक कर ही लेगा, इसलिये वे पहले मन से ही श्री गणेश करते हैं। मन को ठीक करने के लिये उन्होंने जो पद्धति निकाली वह बड़ी सुंदर है। सब से पहले पांच यमों का अभ्यास आवश्यक है और ये है—अहिंसा सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और दान न लेना[1]। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि मन को सदा प्रफुल्ल रखने के लिये इन पांचों नियमों का पालन करने से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। अब अहिंसा क्या है, सत्य क्या है या दान क्या है, इन बातों पर सविस्तर विचार करने का यहां स्थान नहीं हैं। इतना कहना पर्याप्त है, कि जो भरसक किसी को दुख नहीं देता

(अहिंसा), किसी को हानि पहुँचाने के अभिप्राय से झूठ नहीं बोलता, (सत्य) चोरी नहीं करता (अस्तेय) केवल मात्र दो एक संतान लाभ के लिए स्त्री सहवास करता है (ब्रह्मचर्य) और जीविका के लिये किसी का मुहताज नहीं है (अपरिग्रह) वह निश्चय ही सदा प्रसन्न चित्त रहेगा और काम क्रोध, मद, मोह, लोभ, तथा मत्सर आदि स्वास्थ्य के घोर शत्रु उससे सदा दूर रहेंगे।

पर ये ऐसी चीज़ें नहीं हैं कि कुछ थोड़े दिनों में इनका अभ्यास कर डाला जाय। इसमें समय लगता है। इनको जीवन का एक अंग बना लेना चाहिये।

यमों के बाद फिर नियमों का नंबर आता है। ये संख्या में पांच हैं— शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान।[1]

नियम

शरीर, वस्त्र और मन को सदा स्वच्छ रखना, सदा संतोष यानी ख़ा-मख़ा किसी चीज़ के लिये हाय हाय न करते रहना, भर सक ईश्वराराधन तथा सद्ग्रंथ पाठ करना और अपने को ईश्वर की इच्छा के आधीन सौंप देना अर्थात् वही गीता की नीति—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' का अनुसरण करना, बस इससे बढ़कर शरीर और मन के स्वास्थ्य के लिये दूसरे नियम नहीं हो सकते। इनमें सबसे पहला स्थान 'सफ़ाई' (शौच) का है। आधुनिक वैज्ञानिक संसार तंदुरुस्ती के मानी में सफ़ाई को कितना अधिक महत्व दे रहा है यह बतलाने की ज़रूरत नहीं है। वर्तमान डाक्टरों के अनुसार ७० फ़ी सदी रोग अंदरूनी और बाहरी गंदगी की वजह से होते हैं। इस सफ़ाई के अंतर्गत पहले शरीर के अंदर की सफ़ाई, यानी पुराने दूषित मल को उपवास, रसाहार, फलाहार और साथ-साथ एनीमा या वस्तिकर्म द्वारा बाहर निकालना, फिर स्नान, मालिश आदि द्वारा बाहरी शरीर को स्वच्छ

शौच

---

[1] अहिंसासत्यमस्तेयो ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः—यमा।

रखना—दोनों ही आते हैं। स्नान भरसक सवेरे ही करना उपयुक्त है। शौच तथा दातुन के बाद सारे शरीर को पहले सूखे तौलिये से रगड़ डालना चाहिये। यहाँ तक कि चमड़ी लाल हो जाय और फिर थोड़ा कड़ुवा तेल की मालिश स्वयं या किसी दूसरे से कराना और फिर ठंडे जल से भरसक नदी की धारा में स्नान करना चाहिये। आसन और प्राणायाम स्नान के बाद ही उत्तम होते हैं, पर जिसको न सुविधा हो सके वह स्नान के कम से कम आधा घंटा पहले भी कर सकते हैं।

संतोष

सफ़ाई के बाद संतोष आदि के नंबर आते हैं। कहते हैं जो ज्यादा 'निन्यानबे के चक्कर' में पड़ा उस पर चिंता का राज्य हुआ और फिर कहां की तन्दुरुस्ती। 'चिंता' को 'चिता' से भी बढ़ कर कहा गया है। जो कुछ ईमानदारी से तथा अपने कर्त्तव्य पालन से प्राप्त हो जाय उसी में संतुष्ट रहना ही सर्वोत्तम नीति है। इसके यह मानी नहीं हैं कि ऊंची महत्वकांक्षा कर आगे बढ़ने की कोशिश ही न करो। क्योंकि भारतवर्ष के इतने पिछड़े हुये देश (अन्य पाश्चात्य उन्नत राष्ट्रों की तुलना से) होने का एक कारण यह भी बतलाया जाता है कि यहाँ के लोग बड़े संतोषी होते हैं। 'संतोष' का मतलब यहां सिर्फ़ यह है कि भरसक ऊंचे से ऊंचे आदर्श तक पहुँचने की कोशिश करो, पर जो अप्राप्य हैं या प्रयत्न करने पर भी जो न मिल सके उसके लिये ख़ा-मख़ा मन ख़राब मत करो, नहीं तो शरीर मिट्टी में मिल जायगा।

तप और स्वाध्याय

थोड़ा समय ईश्वर के ध्यान तथा प्रार्थना में, अपने-अपने धर्म और अवस्था के अनुसार सबको देना चाहिये। शरीर और मन दोनों के स्वास्थ्य पर इनका अपूर्व प्रभाव पड़ता है। किसी विशेष फल की आशा या उद्देश्य से पूजा-पाठ न करना चाहिये। इनको तो कर्त्तव्य समझ कर ही करना श्रेष्ठ है।

[1] शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः।

और स्वाध्याय के बारे में केवल यही कहना है कि जो मनुष्य प्रति-दिन कोई नई चीज़ सीखता है या याद करता है वह कभी बूढ़ा नहीं होता है। कोई न कोई नवीन वस्तु का अध्ययन, जिसमें मनोरंजन के साथ ही ज्ञान की वृद्धि हो, स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है। स्वाध्याय से केवल यही मतलब नहीं कि कोई किताब ही रटी जाय। संगीत, कला, ललित कला, साहित्य या विज्ञान रुचि के अनुसार किसी भी विद्या की साधना में थोड़ा समय नित्य देना चाहिये।

और फिर अंत में सभी प्रकार के परिणाम या फल-प्राप्ति ईश्वर हरि-इच्छा के ऊपर छोड़ रखनी चाहिये। गीता के अनुसार संसार में सुखी होने का सब से अच्छा उपाय यही है कि भरसक अपने आदर्श तक पहुँचने की चेष्टा करना और फल या परिणाम ईश्वर के ऊपर छोड़ रखना। इससे सब से बड़ा लाभ यह होता है कि आकांक्षा के अनुसार फल न मिलने पर दुख होकर मन नहीं बिगड़ता। क्योंकि मन अगर ख़राब हुआ तो शरीर तो ख़राब होता ही है आगे का सारा सिल-सिला बिगड़ जाता है।

दुःख की बात यह है कि अन्य व्यायाम पद्धति वाले मानसिक स्वास्थ्य तथा चित्त को एकाग्र कर उसमें शांति स्थापित करने पर बिलकुल ज़ोर नहीं देते। इससे सिर्फ़ यही होता है कि कुछ दिन दिखाने के सीने मोढ़े भले ही उभड़ आवें और पशु-बल कुछ अधिक हो जाय; पर पूर्ण और वास्त-विक तथा स्थायी स्वास्थ्य नहीं मिल सकता। इसलिये सबसे पहले हम इन यमों और नियमों के यथाशक्ति अभ्यास करने पर इतना ज़ोर दे रहे हैं। और ध्यान से इन यमों और नियमों पर ध्यान देने से किसी एक की स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से कोई एक भी साध लेने सिद्धि पर शेष सब अपनेआप सध जाते हैं या सधते चले जाते हैं। अब जैसे यमों में सब से पहले अहिंसा रक्खी हुई

है। इसी एक अहिंसा के सिद्ध हो जाने से सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह अपने आप ठीक हो जायंगे।

हम उदाहरण देकर इस विषय को थोड़ा और स्पष्ट करने की चेष्ठा करते हैं। पहले संक्षेप में अहिंसा कहते किसको हैं यह जान लें। यों तो केवल एक अहिंसा क्या है यही स्पष्ट करने के लिये एक पूरी पुस्तक चाहिये। यह विषय बड़ा व्यापक है। ज़्यादा उलझन में न पड़ कर हमारे लिये सिर्फ़ इतना समझ लेना काफी है कि मनसा, वाचा कर्मणा, किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना (अपने स्वार्थ के लिये) बस; यही अहिंसा है। या दूसरे शब्दों में—किसी प्राणी के साथ कोई ऐसा व्यवहार न करो जो तुम नहीं चाहते कि कोई दूसरा तुम्हारे साथ करे।

अब यह स्पष्ठ है कि जो ऐसा करेगा वह कभी झूठ न बोलेगा, न चोरी करेगा, न दान पाने का लोभ करेगा, और न बलात्कार या व्यभिचार की ही प्रवृत्ति होगी उसे। और फिर यह कोई भी समझ सकता है कि जिसने इतना कर लिया वह तो मनुष्य-रूप में देवता हो गया एक प्रकार से। और फिर स्वास्थ्य तथा जीवन और मृत्यु तक पर विजय प्राप्त करना उसके लिये कठिन नहीं हो सकता।

और साथ ही यह भी ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि जिसने यमों को (या कोई एक यम जैसे अहिंसा) साध लिया उसको नियम स्वतः ही सिद्ध हो जायंगे। कौन कह सकता है कि अहिंसा या सत्य का अनुयायी गंदा रहेगा। और जो सदा स्वच्छ रहता है वह तप-स्वाध्याय आदि में निश्चय ही अपने समय का अधिकांश भाग लगाता होगा। और जो इतना करता है वह निश्चय ही ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखता हुआ अपने को बहुत पहले से ही उसके हाथों सौंप चुका होगा।

अब आसनों के स्थान, समय या उनके साथ अन्य व्यायामों के संबंध आदि पर दो-दो बातें कह कर उनका ब्योरा आरंभ करेंगे।

—

स्थान और समय

हमें यह जान रखना चाहिये कि मोटी तौर से सारे आसन दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं :—

(१) ध्यानात्मक ।

(२) व्यायामात्मक ।

ध्यानात्मक

जिन आसनों का उद्देश्य केवल चित्त को एकाग्र करना है उन्हें हम ध्यानात्मक कहेंगे। इनमें शारीरिक मिहनत बराय-नाम होती है, पर चित्त में शांति, उत्साह तथा आनन्द का उद्रेक होता है। इन में रीढ़ को सीधा रख दृष्टि को नासाग्र या भ्रूमध्य में केंद्रित कर बैठना होता है। इनमें कसरत तो कोई ख़ास नहीं, पर मानसिक, और इच्छा रखने वाले के लिये आध्यात्मिक लाभ बहुत अधिक होता है। ये मुख्य चार हैं—पद्म, स्वस्तिक, सिद्ध, तथा सम आसन। ये वास्तव में ध्यान के आसन हैं। इनके लिये एकान्त स्थान, हवादार खुला हुआ साफ़ कमरा या नदी तट सर्वोत्तम है। सूर्योदय से कुछ पहले इसके लिये सब से अच्छा समय है। इनके लिये सुविधानुसार १०, १५ मिनट से लेकर १। २ घंटा तक समय दिया जा सकता है। पर इस बात की पूरी सावधानी रखनी चाहिये कि जब तक ध्यानात्मक आसन किये जायं तब तक आदमी बाहरी दुनिया से अलग रहे। कोई सांसारिक झंझट इस समय उसका ध्यान भंग न करे। कोई छेड़े न उसको। स्नान के बाद ही इनको करना उत्तम होता है। क्योंकि ठंडे स्नान से रक्त-संचार बढ़ जाता है और आसनों से उसके बाद अधिक लाभ होता है।

व्यायामात्मक

भुजग, शलभ आदि आसनों को जिनमें अच्छी ख़ासी, कसरत होती है, हम व्यायामात्मक कहेंगे। ये रुचि या सुविधानुसार ध्यानात्मक आसनों के पहले या पीछे भी किये

जा सकते हैं। पर योगियों का नियम यही है कि पहले व्यायामात्मक आसनों को कर लेना। फिर इतमिनान से ध्यानात्मक आसनों में बैठ कर प्राणायाम करना और फिर ध्यानस्थ होकर किसी एक आसन (जैसे पद्मासन) में १, २ घंटे चित्त को एकाग्र करना या त्राटक का अभ्यास करना।

प्रातःकाल का समय संध्या से अच्छा पड़ता है। उचित तो यह है कि थोड़ा-थोड़ा वक्त दोनों समय साधन में दिया जाय या एक वक्त ध्यान और दूसरे समय व्यायाम किये जायँ।

अन्य व्यायाम

जो लोग उभड़ी हुई मांस-पेशियों वाले व्यायाम करना चाहते हैं उनके लिये सर्वोत्तम नियम यही है कि एक वक्त आसन करें और दूसरी वक्त कोई दूसरी कसरत। दोनों को एक साथ करना ठीक नहीं। जो दोनों वक्त समय नहीं निकाल सकते, उनके लिये ज़रूरी है कि दोनों कसरतों के बीच में कम से आधे घंटे का अंतर डाल दें; या स्नान से पहले पेशीवाली कसरत करलें और स्नान के बाद आसन।

ध्यानात्मक आसन

व्यायामात्मक आसनों को प्रारंभ करने के पहले ध्यानात्मक आसनों का वर्णन आवश्यक है। जो लोग आसनों के साथ प्राणायाम भी करते हैं उनके लिये तो ध्यानात्मक आसनों का अभ्यास बहुत ही उपयोगी है। पर ध्यानात्मक आसनों के विशेष अंग हैं दो दृष्टियाँ और तीन बंध। चित्त को एकाग्र तथा रक्त-संचालन तथा श्वास क्रिया को शुद्ध करने के लिये योगियों ने कई अचूक उपाय निकाले हैं जिनमें से ये दृष्टियाँ और बंध मुख्य हैं।

ये दृष्टियाँ सध जाने पर फिर आगे चल त्राटक सिद्ध करने में बड़ी आसानी हो जाती है। जिसको त्राटक सिद्ध हो जाय, उसकी दृष्टि में आकर्षण-शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि वह चलती हुई ट्रेन तक को रोक सकता है। योगियों का यह दावा कहाँ तक सही है इसकी छान बीन हम यहाँ न करेंगे; पर इतना निस्संदेह है कि दोनों दृष्टियाँ साधने वाले को मन पर काफ़ी नियंत्रण (काबू) हो जाता है और कोई नेत्र-रोग उसके पास नहीं फटक सकते और आगे चल कर साधक इस अवस्था में पहुँच जाता है कि घंटे दो घंटे किसी एक ध्यानात्मक आसन में बैठ कर प्राणायाम या केवल ध्यान (बंधों के साथ) करता हुआ बैठ सकता है। हम पहले दृष्टियों को लेते हैं। इनके नाम हैं—

(१) नासाग्र दृष्टि तथा

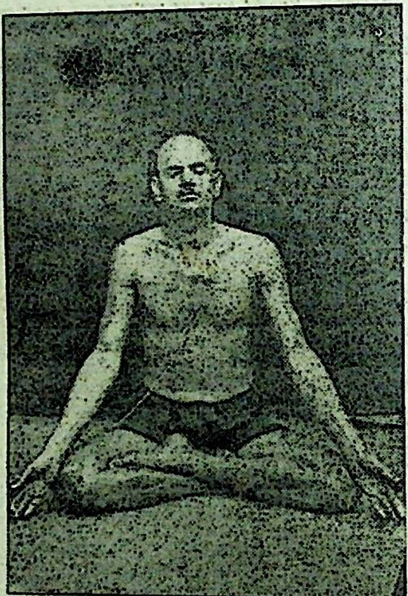
(२) भ्रूमध्य दृष्टि।

नासिका के अग्र भाग (नोक) पर दृष्टि को केंद्रित कर देना और इसी अवस्था में दोनों आंखों को केंद्रित रखना नासाग्र दृष्टि कहलाता है (चित्र नं० १ देखो) पद्मासन के साथ उसी के एक अंग के रूप में या स्वतंत्र रूप से इसका अभ्यास किया जा सकता है।

नासाग्र दृष्टि

बहकते, भटकते हुए मस्तिष्क या बे-लगाम दिमाग़ को काबू में लाने के लिये नासाग्र-दृष्टि बहुत अच्छी चीज़ है। कुछ महीने लग कर इसका अभ्यास करने से मन पर काफ़ी प्रभुत्व हो सकता है।

पर जो लोग बहुत कमज़ोर (शरीर और दिमाग़ दोनों से) हों उनको किसी विशेषज्ञ की देख-रेख में इसका अभ्यास आरंभ करना चाहिये।

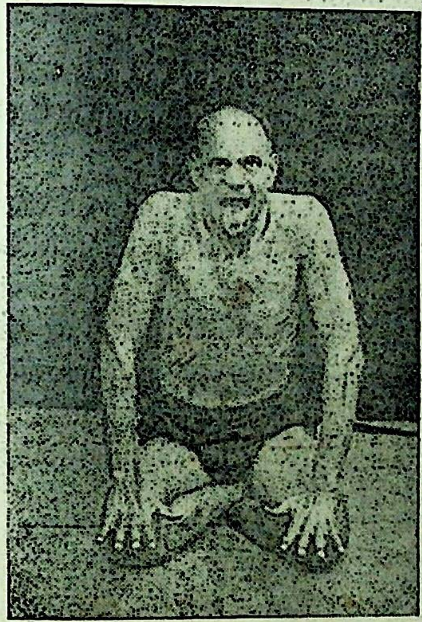


(चित्र नं० १)

नासाग्र दृष्टि

क्योंकि नासाग्र दृष्टि का प्रभाव चक्षु-तंतुओं के द्वारा सीधे मस्तिष्क पर पड़ता है। शुरू में बहुत सावधानी सब के लिये अनिवार्य है। सब से बड़ा विषय यह है कि जितनी देर तक मज़े के साथ अभ्यास किया जा

सके उतनी ही देर तक करना और धीरे-धीरे बढ़ाना; अपनी शक्ति को देखते हुए। जब कि यह मालूम हो जाय कि अभी हम और कुछ देर तक आनंद के साथ कर सकते हैं तब भी कुछ दिन तक न बढ़ाना। जब बढ़ाये विना



(चित्र नं० २)

भ्रूमध्य दृष्टि

संतोष न हो तभी अभ्यास बढ़ाना। इससे यह होता है कि कभी लौटने की या नुक़सान होने की नौबत नहीं आती। यह नियम सभी आसनों या व्यायामों के लिये ठीक है।

दृष्टि को दोनों भौंह के बीचोबीच केंद्रित कर देना और शक्ति अनु-
सार वहीं अर्से तक केंद्रित रखना, भ्रूमध्य दृष्टि कहलाती
भ्रूमध्य दृष्टि है। (चित्र नं० २ देखो)

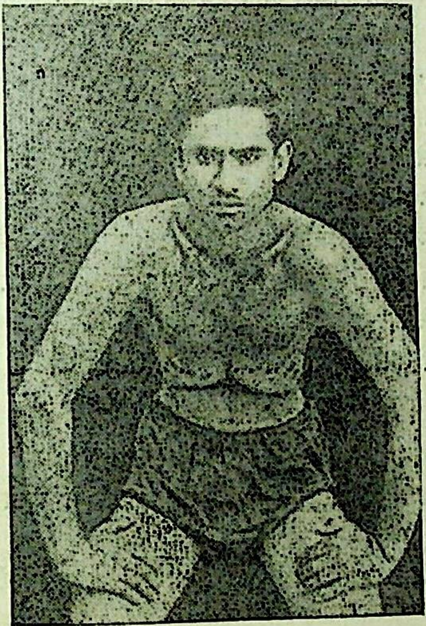
इसका अभ्यास सिंहासन के अंग के रूप में या स्वतंत्र रीति से किया जा सकता है।

नासाग्र दृष्टि की भाँति यह भी चित्त को वश में करने का एक सुंदर साधन है और जो नियम तथा सतर्कता नासाग्र दृष्टि के संबंध में कही गई है वही इसके लिये भी समझना चाहिये।

इन दृष्टियों के करते समय बलात् मन को सब ओर से समेट कर किसी एक स्थान पर केंद्रित करना पड़ता है। जब तक आपकी दृष्टि नाक की नोक या दोनों भौंहों के बीच जमी हुई है तब तक आपका दिमाग़ किसी दूसरी ओर भटक नहीं सकता। और साल छः महीने इस तरक़ीब के सहारे चित्त को एकाग्र करने की आदत डालने के बाद फिर स्वतः इतनी शक्ति हो जाती है कि इच्छानुसार मन से काम लिया जा सकता है। फिर इन साधनों से सहारा लेने की ज़रूरत नहीं रह जाती।

बंध

ध्यानात्मक आसनों से पूर्ण लाभ उठाने के लिये उनके साथ साथ तीन बंध साधते चलने की व्यवस्था योगियों ने की है। ये आगे चल कर प्राणायाम के लिये बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं। ये यों तो स्वतंत्र रीति से



(चित्र नं० ३)

उड्डीयान-बंध

भी साधे जा सकते हैं, पर ध्यानात्मक आसनों और प्राणायाम के साथ करने से ही पूर्ण फल होता है तथा शारीरिक से अधिक मानसिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिये ये नितांत आवश्यक हैं। ये कुल तीन हैं—

(१) उड्डीयान-बंध

(२) जालंधर-बंध ।
(३) मूल-बंध ।

उड्डीयान बंध बैठ कर या खड़े होकर दोनों प्रकार से साधा जा सकता है । (चित्र नं० ६ देखो) बैठ कर यह पद्मासन में किया जाता है । दोनों हाथ घुटन या जंघा पर रहें और गर्दन तथा कंधों का पूरा भार हाथों पर रहे । फिर जहां तक संभव हो उतनी गहरी सांस बाहर निकालिये ताकि फेफड़ों में बिलकुल वायु न रह जाय, और ऐसा करते समय पेट सिकुड़ कर बिलकुल पीठ से मिला दें; (जहां तक संभव हो) हवा बाहर निकालने के बाद गर्दन व कंधों की पेशियां दृढ़ता से जमी रहें और छाती भी संकुचित रहे, पर हवा भीतर न आने पावे और इसके बाद पसलियों को ऊंचे उठा कर (चित्र देखो) नकली तौर पर सांस खींचने की कोशिश कीजिये और साथ ही फेफड़ों में हवा धीरे धीरे भरने दीजिये । ऐसा करने के साथ ही साथ पेट की तनी हुई पेशियां बिलकुल ढीली हो जायंगी ।

उड्डीयान

उड्डीयान में तीन क्रियायें मुख्य हैं

(१) गर्दन और कंधों की पेशियों का जमाना ।

(२) सारी हवा बाहर फेंकने के बाद नक़ली या झूठी तौर से सांस लेना ।

(३) और साथ ही साथ पेट की पेशियों का पूर्ण शिथिलीकरण या ढीला होना ।

ऐसा करने के साथ ही साथ महाप्राचीरा (धुकधुकी) ऊंचे उठ जायगी और पेट में गहरा गड्ढा (जिसको 'पेट खलाना, कहते हैं ठेठ बोली में) बन जायगा । ज़रा सा आगे की ओर झुके रहने पर पेट खलाने में आसानी होती है । क्योंकि वास्तव में पेट खलाने का ही अभ्यास यह है ।

पेट की अंदरूनी मालिश और सफ़ाई के लिये उड्डीयान और नौलि से बढ़ कर संसार में कोई व्यायाम नहीं है; और जीर्ण क़बज़ियत, बदहज़मी,

भूख की कमी आदि का इससे बढ़ कर कोई इलाज भी नहीं है। पर इस का अभ्यास धीरे-धीरे और शुरू में किसी जानकार की देख-रेख में करना अच्छा होगा। सब से सहज़ उपाय यह है कि जब तक आराम से हवा बाहर रोकी जा सके तभी तक रोकिये, फिर इसके बाद कंधों और गर्दन को ढीली छोड़ दीजिये ताकि धीरे-धीरे फेफड़ों में ताज़ी हवा भर जाय। जब पूरी हवा भर जाय तब एक उड्डीयान पूरा हुआ मानना चाहिये। आरंभ में एक हफ़्ते तक एक ही काफ़ी है। फिर छः महीने में सात तक बढ़ा सकते हैं और प्रत्येक में एक से तीन मिनट तक, शक्ति के अनुसार हवा बाहर रोक सकते हैं।

इस क्रिया के शारीरिक लाभ ऊपर बता चुके हैं। घोर कोष्टबद्धता वालों को इसे प्रातःकाल शौच जाने से पहले ही कर लेना चाहिये। पर इसके आध्यात्मिक लाभ इससे कहीं ज़्यादे हैं। संस्कृत में 'उड्डीयान' शब्द का अर्थ है 'उड़ना'। कुंडलिनी को जाग्रत करने यानी चित्त-वृत्तियों को अधोमुखी से उर्ध्वमुखी करने, दूसरे शब्दों में मनुष्य का 'ऊँचा' उठाने के लिये योगियों की पहली सीढ़ी यही है।

फिर पेट की सारी नसों की ऐसी सुंदर अंदरूनी मालिश हो जाती है कि दिन भर के लिये तबीयत ख़ुश हो जाती है। करने वालों को क्रमशः मालूम हो जायगा कि पाख़ाने के वक़्त जब मल नहीं उतरता तब प्रकृति अपने आप एक हलका उड्डीयान करा देती है और फिर तुरंत बँधा हुआ साफ़ पाख़ाना हो जाता है।

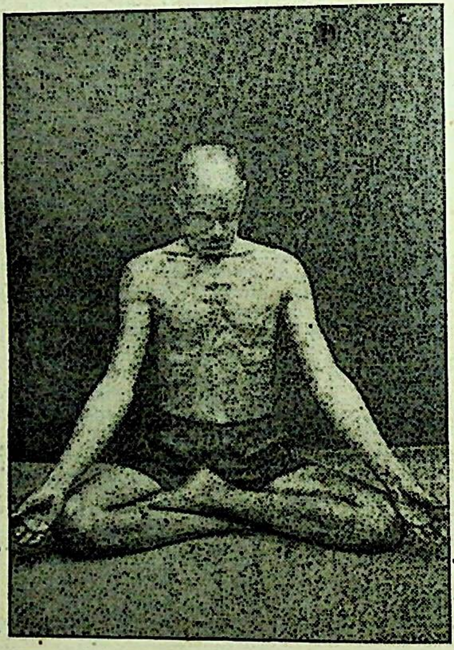
पर जिन लोगों को पेट की ख़ास बीमारी हो उनको यह व्यायाम विशेषज्ञ से परामर्श किये बिना न आरंभ करना चाहिये।

जालंधर-बंध

उड्डीयान बंध के बाद जालंधर बंध का नंबर आता है। इसमें ठुड्डी को झुका कर वहाँ जमा कर देना या गाड़ देना होता है जहाँ गले के नीचे दो

हँसुली की हड्डियाँ मिलती हैं। गर्दन को भी आवश्यकतानुसार झुकाना पड़ता है। (चित्र नं० ४ देखिये)

मतान्तर से ठुड्डी को गले से और नीचे छाती की हड्डी पर जमाना होता है।



(चित्र नं० ४)

जालंधर-बंध

इस का अभ्यास पद्मासन या सिद्धासन के साथ करना उत्तम होता है, पर यों भी किया जा सकता है।

इस से रीढ़ पर एक प्रकार का ऊपरी तनाव पड़ता है जिस से मस्तिष्क का व्यायाम हो जाता है।

जालंधर-वंध

'जालंधर' शब्द के दो रहस्य हैं। जालंधर नाम के एक बहुत प्रसिद्ध और सिद्ध हठ योगी हो गये हैं। संभवतः उन्होंने ही इस वंध का आविष्कार किया या विकास किया जिससे इसका नाम उन्हीं के अनुसार पड़ गया। दूसरा अर्थ यह कि 'जाल' शब्द से मतलब है ज्ञानतंतुओं का। मस्तिष्क में ज्ञानतंतुओं का एक जाल है उनको यह वंध 'धारण' करता है यानी उनको थोड़ी समय के लिये एकाग्र कर मस्तिष्क को आराम दे देता है। इन दृष्टियों, बंधों तथा ध्यानात्मक आसनों का मुख्य उद्देश्य ही है प्रतिक्षण भटकते हुये मस्तिष्क को शांति पहुँचाना जिससे चित्तवृत्ति शांत होकर स्वास्थ्य और आयु बढ़े। जालंधर-वंध के साथ भ्रूमध्य दृष्टि सिद्धासन में बैठ कर जमा देने के बाद कुछ क्षण के लिये मस्तिष्क निश्चय ही एक स्थान पर केंद्रित हो जाता है और शांति, उत्साह तथा स्फूर्ति का अनुभव तत्काल होता है; तथा साथ ही नेत्रों का बड़ा सुंदर व्यायाम हो जाता है।

पर नेत्र ही क्यों; जब मस्तिष्क के सारे ज्ञान-तंतुओं को आराम तथा व्यायाम मिल गया तो सभी नाक कान आदि धड़ के ऊपर की सभी ज्ञानेन्द्रियों को बड़ा सुंदर तथा पर्याप्त व्यायाम मिल जाता है और उनमें चेतनता का संचार होकर नयी जान आजाती है।

प्राणायाम करने वाले को कुंभक काल तक, अर्थात् जब तक वह साँस भीतर रोक रखता है तब तक जालंधर बंध में, रहना चाहिये और फिर सांस बाहर निकलते (रेचक) समय उड्डीयान बंध में जो स्वतः होने लगता है। पूरक (सांस भरने के समय) में मूलबंध किया जाता है। मूलवंध आगे बताया जा रहा है।

मूलबंध

तीसरे वंध का नाम मूलबंध है जो संभवतः सबसे महत्वपूर्ण है।

है। इसमें ब्रह्मरंध्र (गुदा) का संकोचन किया जाता है। इसके अभ्यास के लिए सिद्धासन में बैठना सब से ठीक पड़ता है (सिद्धासन के लिये आगे के चित्र तथा वर्णन देखिये) क्योंकि सिद्धासन में एँड़ी कस कर गुदा के नीचे जमी हुई रहती है जिससे वहाँ की पेशियों को दृढ़ता-पूर्वक संकोचन करने (ज़ोर से सिकोड़ने) में सुविधा होती है।

यद्यपि मूलबंध में केवल गुदा की पेशियों का संकोचम ही कहा है, पर वहाँ की पेशियों के सिकोड़ने पर पेड़ू के नीचे की जितनी पेशियाँ हैं वह सब अपने आप सिकुड़ कर निर्वात-रूप (एयरटाइट) से बंद हो जाती है।

इसको मूल (जड़) बंध इसलिये कहा जाता है कि यह मनुष्य शरीर के मूल को बाँध देता है। यह सभों ने लक्ष्य किया होगा कि गुदा का संकोच करने के साथ ही साथ होता हुआ पेशाब रुक जाता है और फिर कुछ ज़ोर कर ढील देने के साथ ही साथ गुर्दे का रुका हुआ पेशाब निकल कर साफ़ हो जाता है। गुदा की ही पेशियाँ मूत्र तथा वीर्यपात दोनों का नियंत्रण करती हैं।

हमने ऊपर मूलबंध को सब से महत्वपूर्ण इसीलिये कहा है कि मूलबंध जिसको सिद्ध हो जाता है उसको अपने शरीर की सबसे मूल्यवान वस्तु वीर्य तथा उसके इच्छानुसार धारण और स्खलन पर अधिकार हो जाता है।

आधुनिक संसार रुकावट तथा अकाल वीर्यपात की बीमारी से त्रस्त है। निन्यानवे फ़ी सदी परिवारों में अशांति और ग्लानि का साम्राज्य इसी गड़बड़ी के कारण है और दुनिया भर के सारे अख़बारों में ७९ फ़ी सदी विज्ञापन स्तंभन की दवाइयों के हो रहे हैं। पर यह कोई भी समझ सकता है कि ज़हरीली दवा खाकर एक दो बार आते हुये वीर्य को रोकने का परिणाम कितना घातक हो सकता है। अस्तु—

मूलबंध के साधक को शुरू में कुछ दिन कोष्ठवद्धता का अनुभव हो सकता है। पर एक बार सिद्ध हो जाने पर, पेशाव, पाख़ाना तथा वीर्य इन तीनों की क्रियायें शुद्ध होकर मनुष्य उर्ध्वरेता हो सकता है।

यौगिक क्रियाओं में वीर्य की रक्षा के लिये वज्रोली तथा विंदु-साधन नामक दो क्रियायें और हैं और इनको सिद्ध करने की पहली सीढ़ी यही मूलबंध है। विंदु-साधन में गुदा को संकुचित कर मूत्रनाली से पहले वायु, फिर जल, फिर तैल, फिर घी और अंत में वीर्य तक को भीतर खींच लेने का अभ्यास किया जाता है। आम तौर से मूत्र-नाली द्वारा मूत्र और वीर्य को स्खलन करना ही लोग जानते हैं। इसका उल्टा यानी उक्त नाली से कोई निकलता हुआ या बाहर का तरल पदार्थ भीतर भी खींचा जा सकता है इस को शायद ही कोई सोचता हो। अभ्यास द्वारा यह संभव है और जो इसका अभ्यास कर लेता है वह निश्चय ही जितेंद्रिय और काम-शक्ति तथा स्खलन-व्यापार में अपनी इच्छानुसार या आवश्यकतानुसार समय दे सकता है।

बहुत से विज्ञापन ऐसे भी देखे गये हैं जिनमें यह लिखा रहता है कि एक ख़ास रक़म फ़ीस की तौर पर मनीआर्डर द्वारा भेजने से वीर्यस्तंभन की 'विधि' बता दी जायगी। हम इस पुस्तक के पाठकों को बता देना चाहते हैं कि वह 'विधि' और कुछ नहीं यही मूलबंध की क्रिया है और जिस तरह से वह लोग बताते हैं उस से लाभ के स्थान पर भयंकर हानि की ही संभावना अधिक है। क्योंकि मूलबंध आदि यौगिक क्रियायें तथा आसन आदि ऐयाशी में सहायता के निमित्त नहीं ईजाद किये गये थे; वरन् जीवन को पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक सुख प्राप्त करने तथा अंत में तत्वज्ञान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति इसका लक्ष्य था। पर इह जीवन में गृहस्थ-जीवन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। और गार्हस्थ्यजीवन में की शांति पूर्ण दाम्पत्य सामंजस्य तथा संतोष पर ही निर्भर करती है यह भी योगियों से छिपा नहीं था। संतानोत्पादन भर के लिये अथवा स्त्री की शारीरिक और

सामयिक (साथ ही प्राकृतिक और स्वस्थ) आकांक्षाओं की पूर्तिमात्र के लिये सहवास करना यही, नियम रक्खा गया था । इसके लिये सहवास का समय इच्छानुसार या स्वेच्छाधीन रख सकना तथा वीर्य को अमोघ बनाना आवश्यक था सो इस के लिये आसन प्राणायामों के साथ मूलबंध तथा वज्रोली और विंदुसाधन की क्रियाओं का आविष्कार हुआ। और आसन प्राणायामों के साथ ही ये क्रियाएँ सिद्ध भी हो सकती हैं । और फिर एक बार ठीक तरीके पर सिद्ध हो जाने पर साधक की चित्तवृत्ति ही ऐसी नहीं रह जाती कि वह अपनी उच्च साधना से प्राप्त शक्तियों को ऐयाशी ऐसे छोटे कामों में बर्बाद करे। और यदि कोई कुसंगतिवश ऐसा करे भी तो थोड़े ही दिनों में कठिनता से प्राप्त इन शक्तियों को खो भी बैठेगा यह निश्चय है । मूलबंध के साधन को अभ्यास करते समय मन में ऐसा सोचना चाहिये कि मूत्रमार्ग से कोई चीज़ नाभि की ओर ऊँचे चढ़ रही है। कुछ दिन (१,२ मास) बाद उसे ऐसा जान पड़ेगा कि चींटीं सी रेंगती हुई ऊपर चढ़ रही है । इस अवस्था में पहुँचने के बाद वीर्य की गति ऊपर को हो ज़ायगी और कुंडलिनी जाग्रत होकर मनुष्य ऊर्ध्वरेता हो जायगा ।

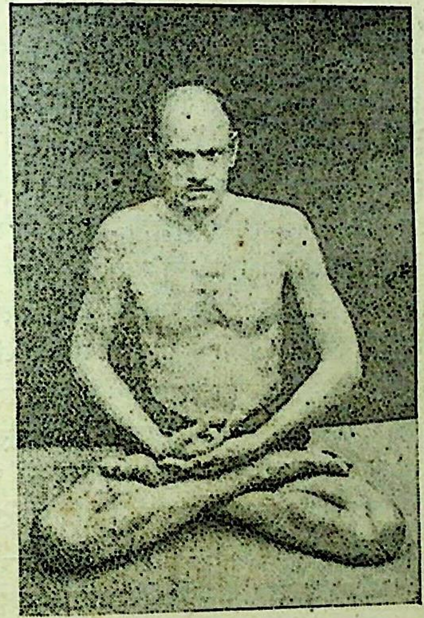
अब हम नीचे मुख्य चार ध्यानात्मक आसनों की विधि देते हैं—

पद्मासन

सब से मुख्य और साथ ही संभवतः सब से महत्वपूर्ण ध्यानात्मक आसन पद्मासन है। इसका नाम 'पद्म' आसन इसलिये पड़ा कि बैठने पर

नाम

साधक की शकल बहुत कुछ खिले हुये कमल के फूल की सी हो जाती है (चित्र नं० ३ देखिये) रान पर रखे हुये दोनों पांव तथा उस पर रक्खी हुई हाथ की



(चित्र नं० ४)

पद्मासन

हथेलियाँ ठीक कमल की खिली हुई पत्तियों की सी ही लगती है।

पहिले दोनों पाँव फैला कर सीधे बैठ जाइये, फिर दाहना पाँव घुटने से मोड़कर बाईं जंघा के मूल पर (कोने पर जहाँ जंघा ख़तम

विधि होकर पेडू शुरू होता है) जमा कर रखिये। फिर इसी भाँति बायाँ पाँव दाहनी जंघा पर इस प्रकार जमाइये कि दोनों एँड़ियाँ आमनें सामने और क़रीब क़रीब मिली सी रहें। फिर बाँएँ हाथ की हँथेली उलट कर दहनी एँड़ी पर और दाहने की हथेली बाईं एँड़ी पर फैला कर रखिये। आँखों को भ्रूमध्य-दृष्टि के अनुसार स्थापित कीजिये और ठुड्डी को जालंधर बंध की विधि के अनुसार बनाइये। बस, पद्मासन की मुद्रा पूरी हुई। ऐसा करने पर गर्दन को छोड़ कर रीढ़ अपने आप ही बिल्कुल सीधी हो जायगी।

इस आसन में बैठकर मूलबंध भी कर लेना चाहिये।

पर जो लोग दैनिक पूजा आदि के निमित्त पद्मासन में बैठते हैं या बैठना चाहते हैं उनको 'बंध' लगाने की ज़रूरत नहीं है। बंधों को तो अलग से अभ्यास करना ही उत्तम होता है। पद्मासन में बंधों का अभ्यास उतना ही देर तक ही चलाना चाहिये कि जब तक आराम से बैठा जा सके।

आध्यात्मिक उत्कर्ष की इच्छा रखने वाले को १५ मिनट से लेकर १। २ घंटे तक पद्मासन में (बंधों के साथ) भ्रूमध्य दृष्टि लगा कर बैठने का अभ्यास बढ़ाना चाहिये। पर जो केवल पद्मासन ही करना चाहते हों वही इतना समय दे सकते हैं। आसनों का पूरा कोर्स करने वाले के लिये सब आसन कर चुकने के बाद पद्मासन में तीनों बंधों के साथ ५ से १५ मिनट तक का समय प्राणायाम में देना चाहिये।

लाभ पद्मासन से मुख्य लाभ यह होता है—पेडू प्रांत को अधिकतर रक्त संचार की प्राप्ति होती है, क्योंकि उस प्रांत की सारी पेशियां कस कर सिकुड़ जाती है। और इस के फल से वहां के सारे स्नायु नवीन रक्त की प्राप्ति से स्वस्थ और ताज़े हो जाते हैं।

यही लाभ आगे बताये जाने वाले अन्य ध्यानात्मक आसनों से भी होते हैं।

सिद्धासन

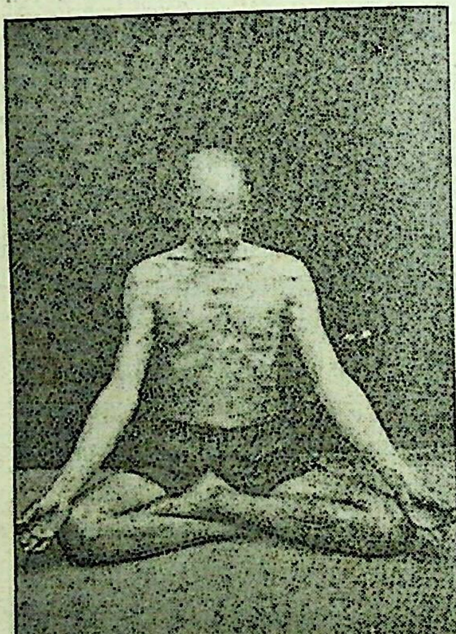
नाम — इस आसन का नाम 'सिद्ध' इस लिये रक्खा गया कि हठयोगियों के अनुसार पूर्ण 'सिद्धि' प्राप्त करने के लिये सब से सुविधाजनक आसन यही समझा जाता है। संस्कृत में 'सिद्ध' उसको कहते हैं जिसकी साधना पूरी हो चुकी हो या जो अपने काम में 'पक्क' या 'मँज' गया हो। दूसरा मुख्य उद्देश्य है काम-वासना को वश में करना, या दूसरे शब्दों में 'इंद्रियजित्' होना।

विधि — सब से पहले पद्मासन की भाँति दोनों टांगें फैला कर बैठ जाइये। फिर बांईं टांग को घुटने से मोड़ कर एँड़ी, जननेन्द्रिय और गुदा के बीच में जो स्थान है वहां जमा दीजिये; तलवा दाहिनी रान से सँटा रहे। पर एँड़ी पर बैठने की कोशिश न कीजिये, क्योंकि दबाव गुदा पर नहीं, बल्कि गुदा और जननेन्द्रिय के बीच जो नाली-मार्ग है वहां पड़ना चाहिये। इस प्रकार बाईं टांग बैठा लेने के बाद जननेन्द्रिय को बाँईं रान और बाँईं पिंडुली के बीच सँभाल कर धर लेना चाहिये, और इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि कहीं से शिश्न या अंडकोष पर वैसा कष्टकर दबाव न पड़े। इसके बाद बाँईं की भाँति दाहिनी टाँग भी मोड़ कर शिश्न के ऊपर उसकी एँड़ी सावधानी से रखें। उसका तलवा बाँईं रान पर फैला देना चाहिये। दाहना पाँव, बाँईं रान और पिंडुली के बीच आधा खोंस लिया जाता है। आमतौर से जननेन्द्रियाँ दाहिनी एँड़ी के नीचे रहती हैं, पर यदि वहाँ काफ़ी जगह न मालूम हो तो शिश्न को दोनों पावों के बीच से बाहर निकाल सकते हैं। पर प्रत्येक अवस्था में इसकी पूर्ण सतर्कता रहे कि जननेन्द्रियों में चोट न पहुँचने पावे।

फिर जालंधरबंध और भ्रूमध्य दृष्टि लगा कर रीढ़ को सीधी कर लेना चाहिये। गर्दन के पास से रीढ़ उतनी ही मुड़ेगी जितनी कि जालंधरबंध लगाने के लिये आवश्यक है।

हाथ और हथेलियों को ज्ञान-मुद्रा में रखना ठीक होगा (चित्र देखो)।

कुछ योगियों के अनुसार इस में मूलबंध का अभ्यास स्वतः और पद्मासन की अपेक्षा सुगमता से होता है।



(चित्र नं० ६)

सिद्धासन (जालंधरबंध और भ्रूमध्यदृष्टि)

लाभ

हम ऊपर कह चुके हैं कि इस आसन का उद्देश्य है बहकी हुई या प्रचंड कामवासना को वश में करना। यह जानी हुई बात है कि गुदा की और जननेन्द्रियों के बीच जो

स्थान है वहीं से होकर वीर्य-वाहिनी नाड़ियाँ गई हैं और कामवासना जाग्रत होने पर वह नाड़ियाँ तथा वहाँ की नसें बहुत फूल उठती हैं। साथ ही यह भी बहुत लोग अनुभव कर चुके होंगे कि फूली हुई उन नसों को दबा देने से वहाँ से .खून लौट जाता है, और प्रचंड वेग में कमी होकर मन शांत हो जाता तथा आया हुआ वीर्य लौट जाता है। वहाँ पर एँड़ी जमा कर देर तक बैठने से निश्चय ही कामवासना वश में की जा सकती है जिसके फलस्वरूप, दीर्घ काल के अभ्यास के बाद, मनुष्य उर्ध्वरेता होगा तथा इच्छानुसार वीर्यपात और धारणाशक्ति का विकास कर सकता है।

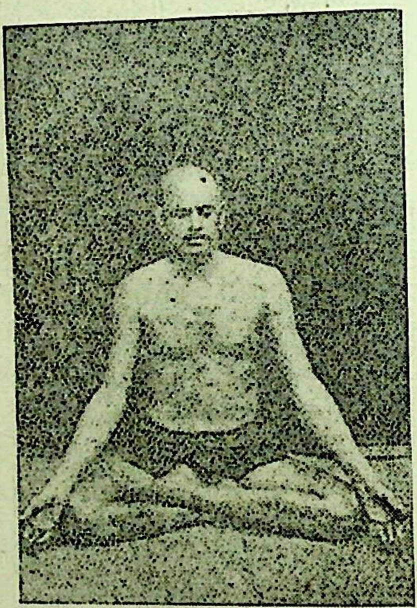
कुछ लोगों का यह विश्वास कि सिद्धासन से आदमी नपुंसक हो जाता है, अमूलक है। हाँ, १ घंटे से अधिक सिद्धासन में गृहस्थों को बैठने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में ब्रह्मचर्य के पालन और वीर्यरक्षा में सिद्धासन सब से बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है।

स्वस्तिकासन

इस आसन का नाम 'स्वस्तिक' इसलिये है कि इसमें हिन्दू लोग इस प्रकार पलथी मार कर बैठते हैं जो हिन्दुओं में

नाम

परम शुभ और मांगलिक या कल्याणकारी माना गया है। 'स्वस्ति' शब्द के अर्थ हैं 'शुभ'। संस्कृत साहित्य में हथेली से भी स्वस्तिक की मुद्रा बनाई जाती थी, मुख्यतः आशीर्वाद



(चित्र नं० ७)

स्वस्तिकासन

देने के समय। इस समय भी तांडव नृत्य में इस मुद्रा का प्रयोग होता है। पुराने लोग अब भी आशीर्वाद देते समय कुछ-कुछ इसी ढंग की

मुद्रा (हाथों को) बनाते हैं। यह मुद्रा योगियों की ज्ञानमुद्रा से मिलती जुलती है (चित्र देखिये) इस स्वस्तिक-आसन में एक विशेष प्रकार से पलथ्थी मार कर हाथों से ज्ञान मुद्रा बना कर नासाग्र दृष्टि लगा कर बैठा जाता है।

पहले पिछले कहे हुए आसनों की भाँति पाँव फैला कर बैठिये। फिर सिद्धासन की भाँति कोई एक पाँव (जिसमें सुगमता या आराम मिले) घुटने से मोड़ कर रान पर रखिये। सिद्धासन में एँड़ी जननेन्द्रिय के नीचे जमाई जाती है, पर इस में नितंब (चूतड़) और जंघा के पास। बस यही मुख्य अंतर है। फिर इस ढंग से कि एँड़ी वहां से हटने न पावे, दूसरा पाँव सँभाल कर हाथों से मोड़ते हुये सामने की रान और पिंडुली के बीच में खोंस दी जाती है। दोनों एँड़ियाँ आमने सामने के नितंब के नीचे और जंघा तथा पिंडुली के बीच में हो जायं और तलवे भीतरी रान से सटे रहें। दूसरे पाँव का अँगूठा सामने की रान और पिंडुली के भीतर घुसा रहता है और सिर्फ़ एक पाँव जो बाद में मोड़ा जाता है, आधे के क़रीब बाहर रहता है। कम से कम अँगूठा, रान और पिंडुली के बाहर रहता है (चित्र नं० ७ देखिये)।

विधि

पिछले दोनों (पद्म और सिद्ध) आसनों की तुलना में यह बड़े आराम का आसन है और इच्छानुसार घंटों तक इस में बैठा जा सकता है।

रीढ़ बिलकुल सीधी रखनी चाहिये और सीने के बाहर उभड़ने की चेष्टा न करनी चाहिये। स्वस्तिकासन देर तक ध्यानमग्न अवस्था में बैठने के लिये है और इस लिये यह आवश्यक है कि कहीं से किसी हड्डी या पेशी पर ऐसा दबाव न पड़े कि तकलीफ़ हो और ध्यान टूट जाय। क्योंकि ऐसा होने से इस आसन का उद्देश्य ही मारा जायगा। हाथों को इस तरह रान या घुटने के पास रखना चाहिये कि आराम मिले। यदि

ज्ञानमुद्रा में हाथ रखने की आदत पड़ चुकी हो तो उसी में हाथों को रखना ठीक होगा, क्योंकि आदत पड़ जाने पर घंटों ज्ञानमुद्रा में हाथों को रखने पर भी तनाव का पता नहीं चलता। और नहीं तो, हाथों को यों भी रान पर घुटनों के पास झुला कर या पद्मासन की विधि से सामने एक पर एक रख सकते हैं। उद्देश्य है अध्यात्मिक विकास, जो कि चित्त के एकाग्र होने पर ही संभव है। तो जिस मुद्रा में हाथों को रखने पर प्रत्येक साधक को चित्त एकाग्र करने में सहायता मिले वही उसके लिये ठीक है। और इन चारों ध्यानात्मक आसनों में जिसमें साधक देर तक बैठ कर शांति और तन्मयता का अनुभव कर सके वही उसको चुन लेना चाहिये। यह कोई भी साधक कुछ दिन चेष्टा करने पर समझ लेगा कि कौन-सा आसन उसके लिये उपयुक्त है। पर चुनाव के समय अपनी शारीरिक और मानसिक आवश्यकता, समय और सुविधा का ख़्याल भी रखना चाहिये। सब से उत्तम रीति यह है कि अपने लिये सब से ठीक कोई एक ध्यानात्मक आसन छाँट लेना और व्यायामात्मक आसनों के कर चुकने तथा शवासन में कुछ देर पड़े रह कर सुस्ता चुकने के बाद इतमिनान से देर तक उसी एक ध्यानात्मक आसन में बैठना। यदि कोई विशेष शारीरिक अवस्था के लिये प्रयोजन हो या कोई विशेष बंध या दृष्टि या त्राटक साधना हो तो पद्मासन या सिद्धासन (यदि कामेन्द्रियाँ काबू से बाहर हों) आदि थोड़ी-थोड़ी देर तक लगाये जा सकते हैं।

स्वस्तिकासन, हम कह चुके हैं, आराम का आसन है, अतः इसमें नेत्र बन्द रखना ही ठीक होगा। क्योंकि इसी में एकाग्रता का अनुभव सब से ज़्यादा संभव है। पर यदि नासाग्रदृष्टि रखते हुये चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास हो चुका हो तो वह भी कर सकते हैं, किन्तु भ्रूमध्य दृष्टि का इस आसन में निषेध है, क्योंकि इस में गर्दन को थोड़ा सामने झुकाना पड़ता है। कारण यह है कि जालंधर बंध लगाने के बाद ही भ्रूमध्य दृष्टि लगाने का नियम है, और जालंधर बंध से गर्दन

मोड़ना और सीना उभाड़ना ज़रूरी है जिससे रीढ़ बिलकुल सीधी नहीं रह सकती जैसा कि स्वस्तिक में अनिवार्य बताया गया है। और जालंधर बंध या कोई बंध लगाने में कुछ न कुछ कसरत हो ही जाती है जिससे पूर्ण शिथिलीकरण और ध्यानमग्नता में बाधा पड़ेगी ही, चाहे जितना भी अभ्यास हो चुका हो।

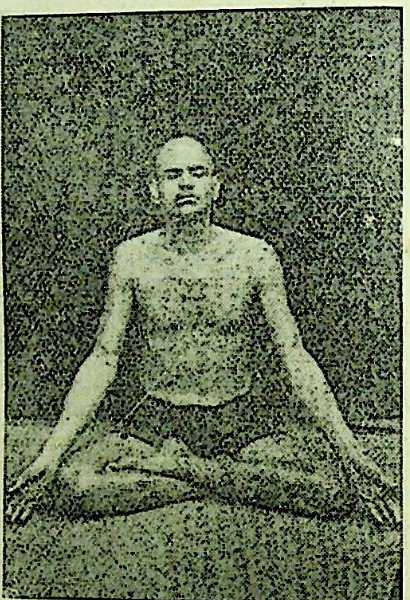
यों तो पूर्ण शिथिलीकरण एक मात्र शवासन में (जिसका वर्णन आगे होगा) ही सम्भव है, पर ध्यानात्मक आसनों में पहले कहे हुये दोनों आसनों की अपेक्षा स्वस्तिकासन में तनाव की हालत बहुत कम रहती है। ठीक यही लाभ चौथे ध्यानात्मक आसन-समासन के भी है।

समासन

चौथा और अंतिम ध्यानात्मक आसन 'सम' आसन कहलाता है। इसमें और स्वस्तिक में बहुत थोड़ा अंतर है। इसको

:नाम

सम इसलिये कहते हैं कि इसमें शरीर के सारे अवयव में एक समता का भाव तथा अंगों में एक 'बराबर'



(चित्र नं० ८)
समासन (नासाग्र दृष्टि)

का संतुलन रक्खा जाता है। स्वस्तिक में भी यह 'समता' का भाव है, पर उसमें एँड़िया जरा आगे-पीछे होती हैं। एकदम बराबरी पर नहीं रहतीं; पर इस में दोनों एँड़ियाँ एकदम बराबर जननेंद्रिय के ऊपर वाली हड्डी (कामाद्रि) पर जमा दी जाती हैं, बस यही इतना अंतर है दोनों में।

समासन का एक नाम 'गुप्तासन' भी है। इसे 'गुप्त' शायद इसलिये कहा है कि इसमें बैठने पर जननेंद्रियाँ एँड़ियों के नीचे एकदम 'गुप्त' हो जातीं, या छिप सी जाती हैं। इसको गुप्तासन संभवतः इसलिये भी कहा जाता होगा कि इस आसन की विधि दीर्घकाल तक एक विशेष वर्ग के योगियों द्वारा गुप्त रक्खी गई थी। वह किसी को इसका भेद बताना नहीं चाहते थे। एक दूसरे मत के अनुसार यह भी कहा जाता है कि आसनों के साथ सारे हठयोग की विद्या एक संप्रदाय के योगियों द्वारा (मत्स्येंद्रनाथ ?) बहुत दिन तक छिपा कर सुरक्षित रहस्य के रूप में रक्खी गई थी और चूँकि सबसे पहला आसन जो इस संप्रदाय के आदि पुरुष ने आविष्कार किया वह यही समासन ही था अतः। इसका उपनाम 'गुप्त' आसन रक्खा है।

जो हो, पर यह बहुत संभव है कि सब से पहला आविष्कृत ध्यानात्मक आसन समासन ही रहा हो। हमारे ऐसा अनुमान करने का मुख्य कारण यही है कि इस की विधि सब से सरल और साथ ही सहज सुंदर भी है। आमतौर से ध्यान से देर तक बैठने के लिये सब से सुविधाजनक यही है और आविष्कारक को अनायास ही सब से पहले यही सूझ पड़ा होगा। इस की विधि पर ध्यान देने से इस की सरलता स्पष्ट हो जायगी।

विधि

हम कह चुके हैं कि स्वस्तिक और सम में केवल एँड़ियों के बैठाने में थोड़ा सा अंतर है। तो पहले स्वस्तिक या किसी भी ध्यानात्मक आसन की तैयारी के ढंग पर पाँव फैला कर बैठ जाइये। फिर कोई पाँव (जो आपको सुविधाजनक प्रतीत हो) संभवतः दाहना पाँव घुटने से मोड़िये। स्वस्तिक में दाहनी एँड़ी सामने की रान और पिंडुली के बीच में घुसी रहती है और बाईं उसी प्रकार दूसरी ओर खोंस दी जाती है, पर समासन में दाहनी और बाईं एँड़ियाँ कामाद्रि के ऊपर जमा दी जाती हैं। इनको इस प्रकार बैठाना चाहियेः—दाहने पाँव को घुटने से मोड़ते समय दाहने

हाथ से उसकी एँड़ी और बाएँ हाथ से अँगूठा पकड़ कर कामाद्रि पर सँभाल कर बैठा दीजिये। पाँव का तलवा उल्टा यानी ऊपर की ओर और पाँव का ऊपरी हिस्सा नीचे की ओर ज़मीन से छुआ रहे (चित्र नं० ६ देखिये)...एँड़ी कामाद्रि पर बैठाते समय इस बात का पूरा ध्यान रखिये कि जननेन्द्रियाँ दबने न पावें और बैठने के बाद वे कुचली न जायँ।

इतना करने के बाद फिर उसी पूर्वोक्त विधि से बायाँ पाँव मोड़िये और हाथों से एँड़ी और अँगूठा थाँभ कर पहली एँड़ी के ऊपर कामाद्रि से सटा कर धीरे से बैठा दीजिये। इस पाँव का अँगूठा सामने की रान और पिंडुली के बीच में खोंस दीजिये। (चित्र नं० देखिये)

इसमें हाथों और नेत्रों की मुद्रा रुचि और सुविधा के अनुसार रख सकते हैं जैसा कि स्वस्तिक के संबंध में हम पहले कह चुके हैं। शर्त यही है कि रीढ़ बिलकुल सीधी रहे और ऐसा तभी संभव है जब कि जालंधर-बंध न लगाया जाय और भ्रूमध्य या नासाग्र दृष्टि भी न लगाई जाय। क्योंकि भ्रूमध्य दृष्टि में गर्दन काफी सामने झुका कर ठुड्डी को हँसलियों के संगमस्थल पर जमाना होता है जिससे रीढ़ खिंच जाती है और सीना कुछ बाहर की ओर उभड़ जाती है। समासन में यह सब मना है। नासाग्रदृष्टि में गर्दन ज़रा पीछे की ओर मोड़ना पड़ता है। इसमें उतना ज़ोर तो नहीं पड़ता और न रीढ़ की सिधाई में ही कोई ख़ास फ़र्क़ पड़ता है, पर कुछ न कुछ मिहनत तो पड़ती ही है। स्वस्तिक और सम का आदर्श यही है कि जितना आराम से बैठ सकते हों उतने आराम से बैठिये और इस प्रकार की मुद्रा में रहिये कि चित्त एकाग्र, जहाँ तक संभव हो उतना, कर सकें। और ऐसा अपेक्षाकृत पूर्ण शिथिलीकरण की अवस्था में ही हो सकता है। दृष्टि और बंध लगाये हुये शिथिलीकरण, ख़ास कर प्रारंभिक (नौसिखिया) साधक के लिये संभव नहीं।

इसलिये सबसे सुगम विधि यही है कि नेत्र बंद रखें और हाथों को घुटने पर या ढीला छोड़ दें या ज्ञानमुद्रा में रख दें।

पर जिसको नासाग्रदृष्टि या कोई दृष्टि या (किसी ख़ास बंध के साथ या यों ही) इतनी सध गई हो कि बिना उसके लगाये न आसन ठीक जमता हो या न आराम मिल कर चित्त ही एकाग्र होता हो तो वह शौक से अपनी प्रियदृष्टि (मय बंध के या यों ही) लगा कर बैठ सकते हैं।

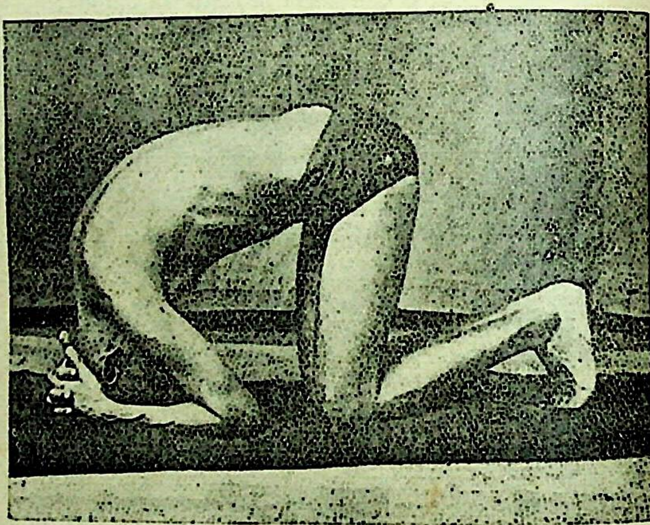
स्वस्तिक या सम में हाथ और नेत्र की स्थिति का कोई कड़ा नियम नहीं है। सबसे कड़ा नियम यही है कि जिसको जिसमें सुविधा हो और जो जिसमें देर तक बैठ सके वही उनके लिये ठीक है और अपने लिये उपयुक्त आसन और मुद्रा खोज निकालना साधक का ही काम है।

एक बात की सावधानी स्वस्तिक और सम में रखनी चाहिये, ख़ास कर समासन में। इसमें जननेंद्रियाँ एँड़ी के नीचे रखी जाती हैं। जिनकी इंद्रियाँ (ख़ासकर अंडकोष) साधारण आकार की हों उनके लिये तो कोई बात नहीं, पर जिनकी अपेक्षाकृत बड़ी हों, (या जिनके अंडकोष में पानी या मांस एकत्रित हो जाने से ज़्यादा बढ़ गये हैं) उन्हें यह आसन न करना चाहिये; और करें भी तो बस उतनी ही देर तक कि उक्त इंद्रियों पर ज़रा भी दबाव या कुचलने का सा अनुभव न जान पड़े।

अब आगे हम व्यायामात्मक आसनों की विधि आरंभ करते हैं :—

शीर्षासन

नाम — संस्कृत के 'शीर्ष' शब्द का अर्थ है 'सिर'। शीर्षासन में सिर के बल आसन जमाया जाता है इसलिये इसे 'शीर्षासन' कहते हैं।

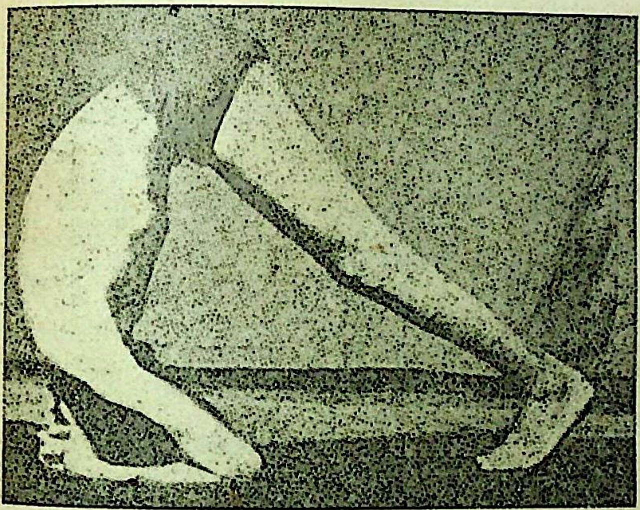


(चित्र नं० १)
शीर्षासन (पहली अवस्था)

विधि — शीर्षासन के लिये सिर के नीचे बिछाने के लिये एक गद्दी होनी चाहिये। कारण यह है कि इसमें सारे शरीर का बोझ सिर के ऊपर रक्खा जाता है और सिर एक बहुत नाजुक चीज़ है। संभवतः दो फ़ुट स्कायर (दो फुट लम्बी दो फुट चौड़ी) कपड़े की तह की हुई गद्दी सबसे ठीक पड़ती है।

रुईदार गद्दी पर आसन ठीक नहीं जमता। किसी मोटे कपड़े की चादर पाँच सात तह करके रख लेना चाहिये।

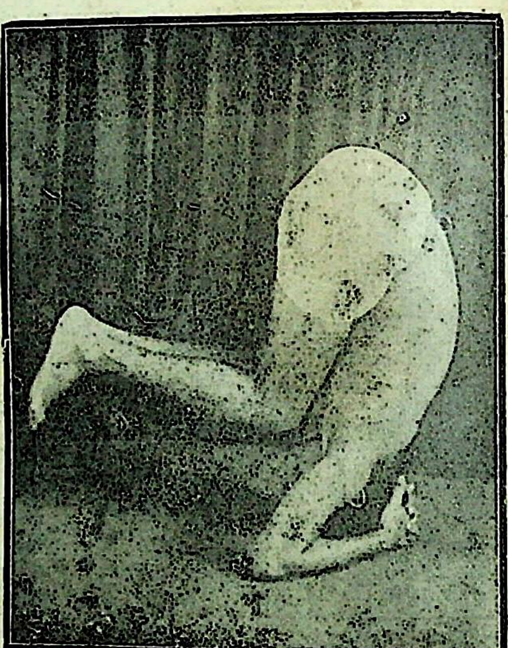
गद्दी बिछाकर उसके किनारे पंजों पर घुटनों के बल बैठिये। दोनों हाथों की उँगलियों से गस्सा बाँधकर हाथों को ज़मीन पर रखिये और कुहनियों को ऐसा रखिये कि एक दूसरी से सवा फ़ुट के फाँसले पर हों।



(चित्र नं० १०)
शीर्षासन (दूसरी अवस्था)

फिर सिर को झुकाकर गस्से के पास लाइये और इस प्रकार गर्दन को मोड़कर सिर को ज़मीन से रखिये कि सिर के पीछे का और बीच का हिस्सा ही ज़मीन से लगे। सिर के सामने के हिस्से पर बोझा न पड़ना चाहिये; क्योंकि इससे एक तो सीधे खड़े न हो सकेंगे; दूसरे आँखों पर ज़्यादा ज़ोर पड़ेगा और रीढ़ सीधी न रह सकेगी।

इतना करने के बाद घुटनों से पैर को सीधा कीजिये और पाँवों को पहले इस तरह जमा दीजिये कि पंजे अपनी जगह से न हटें। पहले एक और उसके बाद दूसरा घुटना मुँह के पास लाइये। अब पंजों को

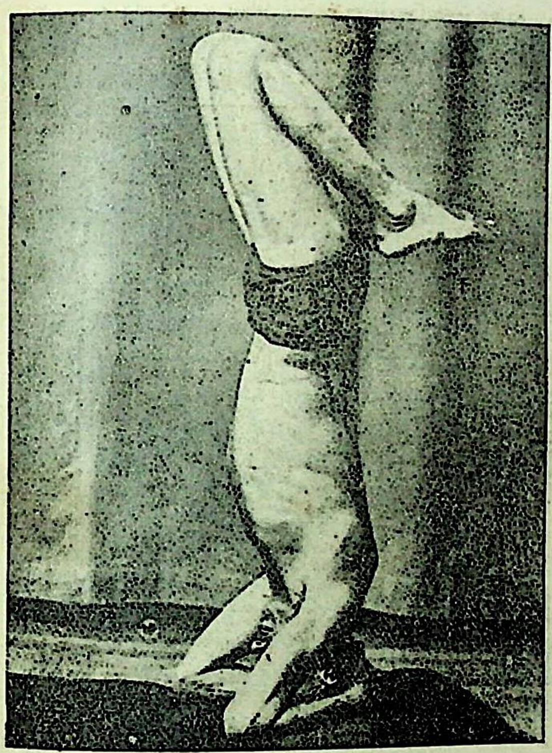


(चित्र नं० ११)

शीर्षासन (तीसरी अवस्था)

ज़मीन से थोड़ा सा (क़रीब ४।५ इंच) उठा कर वहीं पर कुछ देर (क़रीब १५।२० सेकेंड) रुक कर साँस ले लीजिये। शुरू में २।४ दिन तक इतना ही तक रखिये और इतने का अभ्यास हो जाने पर पाँवों को ऊपर उठा कर एँड़ी को नितंब के नीचे उल्टी रान से मिला दीजिये (तीसरी

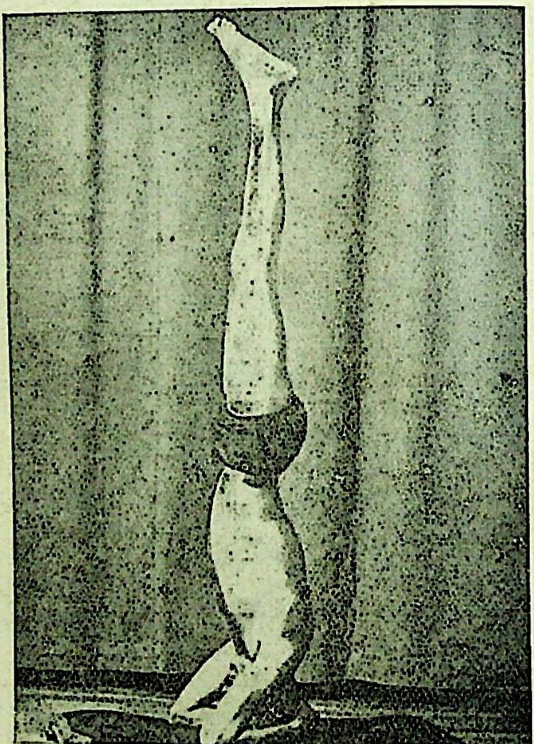
अवस्था का (चित्र नं० ७ देखिये)। इतना हो जाने के बाद शीर्षासन की पूर्णावस्था तक पहुँचने में सिर्फ़ एक सीढ़ी रह जाती है और वह है दोनों पाँवों को सीधे तान देना। यदि दिक्कत मालूम हो तो तीसरी ही अवस्था तक



(चित्र नं० १२)
शीर्षासन (चौथी अवस्था)

कुछ दिन अभ्यास करना चाहिये, क्योंकि तीसरी अवस्था तक करते करते दो चार दिन में अपने आप पाँव अनायास ही ऊपर तन जायंगे। पर झटका दे कर कभी पाँव न तानिये, क्योंकि इससे नुक़सान हो सकता है। आसनों

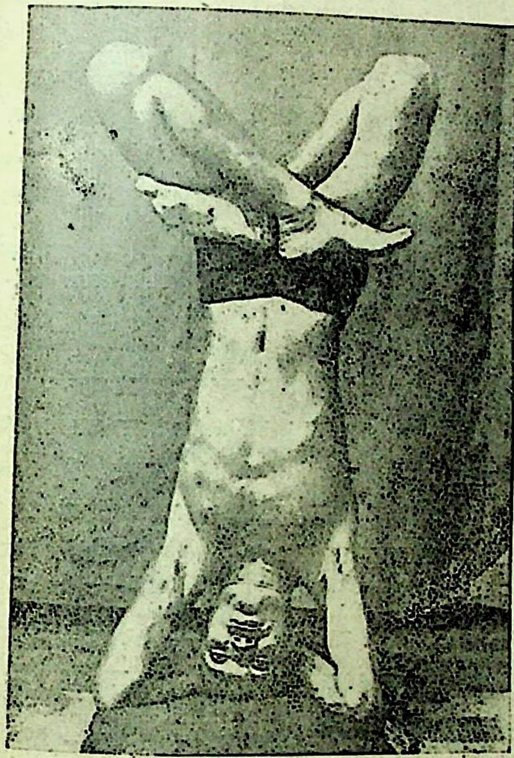
की सभी क्रियायें पूरे इतमिनान के साथ धीरे-धीरे क्रमशः करनी चाहिये। तीसरी अवस्था के बाद घुटनों को धीरे धीरे उठाकर एकदम सीधे (धड़ से समकोण बनाते हुये) सरल रेखा में रखिये। इस अवस्था में एक



(चित्र नं० १२)
शीर्षासन (पूर्णादशा)

हफ़्ते तक प्रथम साधक को लग सकता है। जल्दी कभी न करनी चाहिये। इतना अच्छी तरह सध जाने के बाद ही पाँवों को एकदम सीधा तानने

की कोशिश (पूर्णावस्था का चित्र नं० १० देखिये) करनी चाहिये। पूर्णावस्था में एँड़ी नितंब और पीठ एक सरल रेखा में होंगे।



(चित्र नं० १४)
शीर्षासन

प्रारंभ में पूर्णावस्था में १० सेकंड से लेकर आधी मिनट से ज़्यादा न रहना चाहिये। आसन अच्छी तरह सध जाने के बाद ४।५ मिनट तक रह सकते हैं।

प्रत्येक साधक या तो आसनों का पूरा कोर्स, यानी मुख्य सभी आसन थोड़ी थोड़ी देर तक, या कोई एक आसन अपने लिये चुन लेता है और उसे ही काफ़ी देर तक करता है। इसमें अपनी सुविधा और शिकायत (जिस शिकायत या रोग को दूर करने के लिये जो आसन चुना जाय) का ध्यान साधक को रखना चाहिये।

पूरे कोर्स वाले के लिये किसी भी आसन में ५।६ मिनट से ज़्यादा समय न देना चाहिये। पर जो केवल शीर्षासन ही करना चाहते हैं वह १५ मिनट तक दे सकते हैं। बहुत से साधक ऐसे भी मिलेंगे जो घंटे घंटे भर इस आसन में टंगे रहते हैं और पद्मासन (उर्ध्वपद्मासन) लगाते हैं (चित्र नं० ११ देखिये) पर वह और बात है। यह एक प्रकार की तपस्या हो जाती है।

पहले तो यह आसन बड़ा कठिन यह सोचकर जान पड़ेगा कि सिर्फ़ सिर के ऊपर इतने बड़े शरीर का बोझा कैसे सँभाला जायगा, पर अभ्यास हो जाने के बाद यह बिल्कुल आसान हो जाता है। जैसे कि मामूली तौर से पाँव पर खड़े होने पर हमें बिल्कुल पता नहीं चलता कि हमारे सारे शरीर का बोझ पाँवों पर है उसी प्रकार कुछ महीनों के बाद सर के बल खड़े होने पर भी शरीर के बोझ का कुछ पता न चलेगा। बात यह होगी कि आसन सिद्ध हो जाने पर और संतुलन ठीक हो जाने पर शरीर का बोझा ठीक अनुपात में सारे अवयवों में बँट जायगा और कुछ पता न चलेगा।

कुछ लोग किसी दूसरे आदमी के सहारे या दीवार के सहारे शुरू में अभ्यास करने की आदत डालते हैं। पर यह ग़लत तरीक़ा है। सच्चा संतुलन (बैलेंस) इस तरह से कभी आता ही नहीं। साधने में १।२ हफ़्ते, या ज़्यादा से ज़्यादा चाहे महीना भर लग जाय, पर इसको करना स्वतंत्र रीति से ही चाहिये। जैसा कि हम कह चुके हैं, पहले हफ़्ते में पहली अवस्था तक ही रहिये, फिर घुटनों को शरीर के साथ समकोण

(दूसरी और तीसरी शकल) वाली अवस्था तक में १।२ हफ़्ते रहिये और जब इस अवस्था में वजन बैठ जाय और आसन डगमग न हो तो समझना चाहिये कि शीर्षासन बारह आने सिद्ध हो गया। फिर इसके बाद किसी रोज़ पाँव अपने आप ऊपर तन जायँगे, अनायास, आपको कोशिश भी न करनी पड़ेगी।

आसन कर चुकने पर ठीक जिस तरह पाँवों को सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ाया था, इसी तरह विविध शक्लों में कुछ सेकेंड रुकते हुये ही उतारना चाहिये। एकदम से धमाके के साथ कूद सा पड़ना ठीक नहीं।

अंत में, समय के बारे में बड़ी सावधानी इस आसन में रखनी चाहिये। ज़रा भी ज़ोर पड़ने लगे तो फ़ौरन बंद कर देना और लक्षणों या निसर्गों पर बड़ी सतर्क दृष्टि रखनी चाहिये। नीचे हम इस आसन के कुछ 'निषेध' दे रहे हैं जिनको सदा ध्यान मेंरखना आवश्यक है। क्योंकि मामूली तंदुरुस्ती वाले सभी लोग इसे कर सकते हैं, पर नीचे लिखी हुई कुछ शिकायतें ऐसी हैं जिनके रहते हुये शीर्षासन करना ठीक नहीं:—

(१) जिन लोगों के कान बहते हों या जिनके कान के पर्दों में कमज़ोरी या कोई ज़ख़्म हो उन्हें शीर्षासन न करना चाहिये। और अच्छे होने पर कुछ महीने बाद इसे आरंभ करना उत्तम होगा।

(२) आँख में जिनके कोई ख़ास कमज़ोरी हो वह जब तक वह कमज़ोरी क़ायम है, तब तक शीर्षासन को बचा जायँ तो अच्छा है।

(३) जिन लोगों का रक्तचाप १५० से ऊपर और १०० से नीचे रहता हो वे या तो शीर्षासन न करें और करें तो किसी विशेषज्ञ से परामर्श कर, उसकी देख-रेख में।

(४) जिन लोगों का दिल कमज़ोर हो या सिर के बल खड़े होने पर जिनके दिल में धड़कन शुरू हो जाती हो उन्हें शीर्षासन मना है।

(५) जिनको कब्ज़ियत ज़्यादा रहती और पाखाना बहुत कड़ा हो वे भी शीर्षासन बँचा जायँ तो अच्छा।

(६) जिन लोगों का .ज़ुक़ाम या कफ़ बिगड़ कर सूख गया हो और बहुत पुराना हो गया हो उन्हें शीर्पासन से नुक़सान हो सकता है, पर शुरू में अगर रोग जीर्ण न हो इससे फ़ायदा हो सकता है।

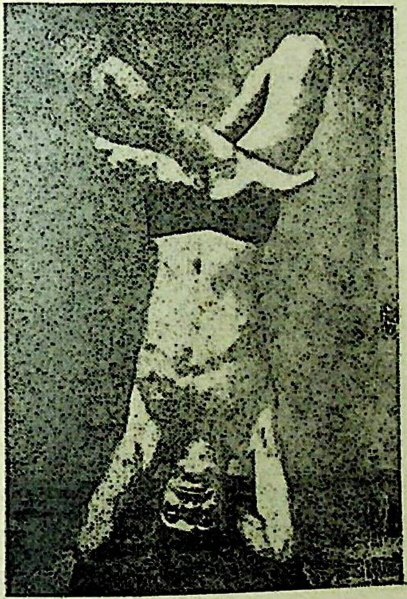
(७) किसी थकान वाली कड़ी कसरत के बाद तुरंत शीर्षासन कभी नहीं करना चाहिये। कम से कम आधे घंटे का अंतर होना चाहिये।

पर इस ऊपर वाली सूची को देखकर घबड़ाने की ज़रूरत नहीं है। शीर्षासन कोई ऐसी ख़तरनाक चीज़ नहीं है कि ठीक तरीके से की जाय और हानि होने की तनिक भी संभावना हो। अब हम आगे इसके द्वारा होने वाले लाभ और चिकित्सा-विधान दिखायेंगे, पर उनके पहले शीर्पासन की दो एक विकसित क्रियायें हैं जिनका उल्लेख कर देना हम आवश्यक समझते हैं। इनको केवल उन्हीं लोगों को साधना चाहिये जो एकमात्र शीर्पासन को ही विशेष कर सिद्ध कर डालना तथा केवल मात्र इसी के द्वारा पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करते हुये आध्यात्मिक उत्कर्ष की ओर बढ़ना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में 'शीर्पासन की यह क्रियायें मुख्यतः उन हठ-योगियों के लिये हैं जो अकेले इसी के द्वारा पूर्णसिद्धि लाभ करना चाहते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि दूसरे लोग, या केवल शारीरिक उत्कर्ष के अभिलाषी इनको न साधें। यदि वे साधारण तंदुरुस्ती रखते हैं, और ऊपर कही हुई 'निषेध' वाली सूची के अंदर की कोई शिकायत उन्हें नहीं है तो वे शौक से इन्हें भी साध सकते हैं; और 'अधिकस्य अधिकं फलं' वाली नीति के अनुसार इसका परिणाम भी अच्छा ही होगा। कारण यह है कि इससे मामूली शीर्पासन से व्यायाम कई गुना अधिक होता है, क्योंकि इसमें 'शीर्षासन' पद्मासन, हालासन, तथा पश्चिमोत्तान आदि कई आसन एक साथ घुले मिले होते हैं। इसलिये हमारी सलाह यह भी है कि ख़ास ख़ास सभी आसन भली भाँति सिद्ध हो जाने और कम से कम छः महीने आसन-व्यायाम कर चुकने के बाद इनको आरंभ करना चाहिये।

ऊर्ध्व पद्मासन (शीर्षासन का प्रथम विकास)

नाम

शीर्षासन के प्रथम विकास को ऊर्ध्व पद्मासन कहते हैं। इसको ऊर्ध्व पद्मासन इसलिये कहते हैं कि शीर्षासन करने के साथ ही इसमें पद्मासन लगा लिया जाता है। यौगिक साहित्य में इसका एक नाम उत्थित-ऊर्ध्व-



(चित्र नं० १५)

ऊर्ध्व-पद्मासन (शीर्षासन का प्रथम विकास)

पद्मासन भी है। 'उत्थित' माने 'उठा हुआ' तथा 'ऊर्ध्व' माने ऊंचे यानी ऊंचे (सिर के ऊंचे या ऊपर) उठाया हुआ पद्मासन।

यदि शीर्षासन और पद्मासन दोनों सिद्ध हो चुके हैं तो इसकी विधि बहुत सरल है (चित्र देखिये)। शीर्षासन की

विधि

पूर्ण दशा में रहते हुए पद्मासन लगाइये; यानी कोई एक पाँव मोड़ कर उसके सामने की रान पर उसे रखिये और इसी प्रकार दूसरा पाँव मोड़ कर उसके सामने वाली जंघा पर पद्मासन की विधि से जमा दीजिये। बस 'ऊर्ध्व' अथवा 'उत्थित पद्मासन' हो गया। इसी अवस्था में आधा मिनट से पाँच मिनट तक रहिये।

इसमें एक सावधानी रखनी आवश्यक है। आरंभ में प्रायः साधक गिर पड़ता है। इस से घबड़ाने की कोई बात नहीं है। जो घोड़े पर चढ़ता है वही गिरता है। इस में ख़्याल इस बात का रखना चाहिये कि बैलेंस (वज़न) न बिगड़ने पावे। शुरू में कुछ दिन आसन डाँवाडोल रहेगा, और आगे या पीछे गिरने की नौबतें आया करेंगी। पर पीछे गिरना (पीठ के बल) ठीक नहीं। इसलिये पद्मासन लगाने के बाद घुटनों को पहले से ही थोड़ा सामने की ओर झुका रखना ठीक होता है, क्योंकि सामने से उतारना तो है ही आसन कर चुकने के बाद, और गिरते गिरते भी सँभल सकते या सहारा ले सकते हैं। पर पीछे गिरे तो गये, क्योंकि इधर सहारा लेने का कुछ नहीं है। मामूली शीर्षासन के संबंध में भी इस तरह की सतर्कता रखनी चाहिये।

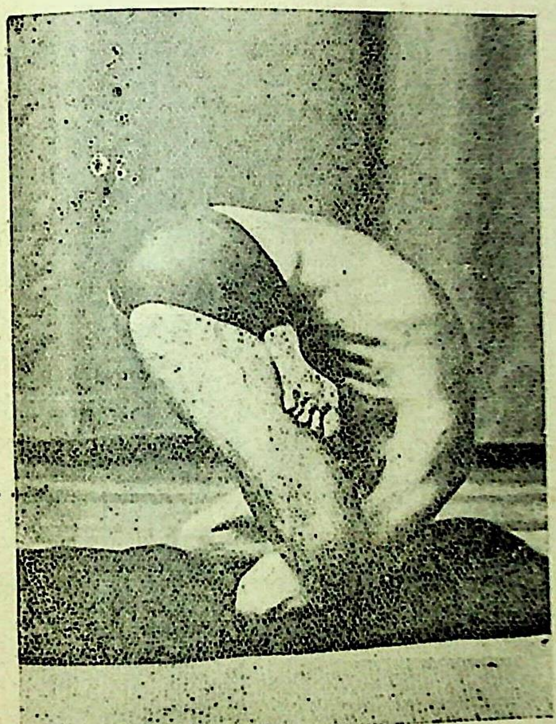
द्वितीय विकास या पश्चिम-शीर्षासन

ऊर्ध्व या उत्थित-पद्मासन सिद्ध हो जाने के बाद और एक क़दम आगे बढ़ना चाहिये। पर कम से कम एक सप्ताह तक

नाम

प्रथम विकास तक ही संतोष करना चाहिये। द्वितीय विकास में शीर्षासन में लगे हुये पद्मासन को मोड़कर पेट से छुलाया जाता है। इससे एक क़दम और आगे बढ़ कर (जिसको हम विकसित शीर्षासन की पूर्णावस्था या तृतीय विकास कह सकते हैं) घुटनों को और ज़्यादा मोड़ कर एक दम नीचे हाथों की बग़ल पर लाकर

जमा देना होता है। इन दोनों अवस्थाओं को 'पश्चिम' शीर्षासन भी कहते हैं, क्योंकि इसमें 'पश्चिमोत्तान' नामक आसन में रीढ़ का जो मोड़ होता है वही इसमें भी हो जाता है। अंतर यही है कि पश्चिमोत्तान में



(चित्र नं० १६)
पश्चिम शीर्षासन या शीर्षासन का द्वितीय विकास

सीधे बैठ कर झुकना होता है और इसमें शीर्षासन के ऊपर पद्मासन लगा कर झुकना पड़ता है।

विधि

पद्मासन में मुड़े हुये घुटने जब पेट को छू लें तब उनको नीचे की ओर मोड़ते हुये बाहुमूल तक ले जाइये और वहीं पर रुक जाइये। यहीं पर शीर्षासन का द्वितीय विकास पूरा हो जाता है। इसी का एक विस्तार और है जिसे हम शीर्षासन का तृतीय या अंतिम विकास अथवा पश्चिम शीर्षासन की पूर्णावस्था कह सकते हैं। पर द्वितीय विकास सध जाने पर कुछ हफ़्ते वहीं तक रहिये और जब अनायास यहाँ तक की विधि ४-५ मिनट तक होने लगे तब अंतिम अवस्था वाला शीर्षासन साधिये।

तृतीय विकास या चरम शीर्षासन[1]

नाम

अब हम विकसित शीर्षासन की चरम सीमा यानी अंतिम मोड़ की ओर बढ़ते हैं। इसको हमने 'चरम शीर्षासन' इसलिये कहा है कि इसमें रीढ़ के मोड़ की अंतिम (जिसे संस्कृत में 'चरम' कहते हैं) सीमा तक पहुँचते हैं। इससे आगे रीढ़ मोड़ी जा ही नहीं सकती, क्योंकि आगे जगह या गुंजायश ही नहीं रह जाती। (चित्र नं० १७ देखिये)

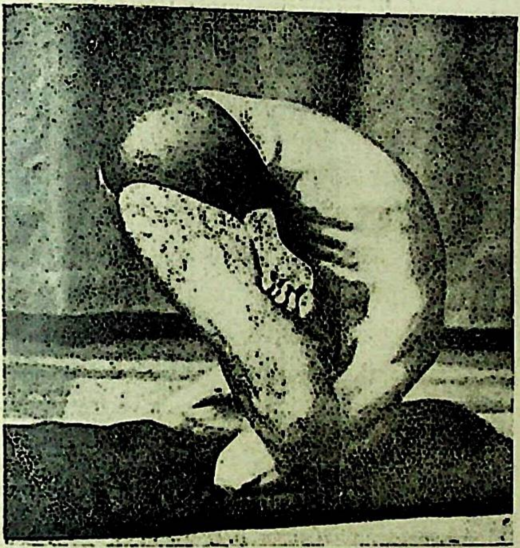
पर इसकी विधि देने के पहले हम साधकों को सतर्क कर देना चाहते हैं कि जिनको पश्चिम शीर्षासन करने में ज़रा भी कठिनाई मालूम पड़ा करती हो वह चरम शीर्षासन की चेष्टा न करें, वहीं तक (यानी ऊर्ध्व पद्मासन तक ही) संतोष करें। प्रलोभनवश ज़्यादा खींच-तान न करें। क्योंकि चरम शीर्षासन का इतना अंगों का (ख़ास कर रीढ़ का) तोड़-मरोड़ किसी दूसरे आसन में नहीं है और न ज्ञानेंद्रियों (आँख, कान दिमाग़ आदि) पर ही किसी दूसरे आसन द्वारा इतना तनाव या ज़ोर पड़ता है

---

१ 'चरम शीर्षासन' शब्द लेखक का अपना गढ़ा हुआ है। इसके लिये कोई अलग नाम न होने के कारण यह शब्द बनाना पड़ा।

विधि

यदि पश्चिम शीर्षासन (द्वितीय विकास) तक भली भाँति साध चुके हैं तो चरम शीर्षासन की विधि में कोई नई बात नहीं बतानी है। इसको ज़रा और आगे तानने से ही शीर्षासन के अंतिम विस्तार तक आप पहुँच जायँगे।



(चित्र नं० १०)

लगे हुए पद्मासन को बाहुमूल पर ही स्थिर रहने दीजिये और कंधे से धड़ को और मोड़ कर बाहुओं पर झुका दीजिये। सारा सररी मानों तहिया कर बाहुओं पर उलट कर थोड़ी सी जगह (प्रायः २½ वर्ग फ़ीट)

में रख दिया गया हो, और ऊपर से एक गांठ लगा कर बांध दिया गया हो, ऐसा जान पड़े (चित्र नं० १७ देखिये) रीढ़ की हड्डी और पीठ मुड़कर धनुही की तरह बन जाती है और साथ ही पेट की पेशियाँ हद दर्जे तक सिकुड़ जाती हैं।

विपरीत शीर्षासन
(शीर्षासन की उल्टी क्रिया)

शीर्षासनों की एक विपरीत क्रिया भी है जिसके अनुसार आरंभ या श्री गणेश ही इस चरम शीर्षासन से होता है और

नाम

जिसको हमने मामूली शीर्षासन कहा है वह सब के अंत में किया जाता है। यदि शरीर में लोच काफी है तो साधक को इसी में सुविधा पड़ती है। इसका नाम हमने इसी से 'विपरीत' शीर्षासन रक्खा है कि इसमें जो क्रिया या शीर्षासन का तीसरा विकास सब के अंत में करनी है वही सब से पहले, और जो सब से पहले करनी है वही सब के अंत में की जाती है।

'विपरीत शीर्षासन' कोई अलग आसन नहीं है। इस में आरंभ में ही गद्दी पर पद्मासन लगा लिया जाता है और तब

विधि

हाथ की उँगलियों का गस्सा बना कर सिर गद्दी पर टेका जाता है। इसके बाद पद्मासन में बँधे हुये घुटनों को उठा कर बाहुमूल पर (चरम शीर्षासन के स्थान पर) जमा दिया जाता है। यही है विपरीत शीर्षासन की पहली अवस्था।

विपरीत शीर्षासन की दूसरी अवस्था में पद्मासन को थोड़ा और सीधा कर, कंधे से धड़ के मोड़ को कुछ कम करते हुये

द्वितीय अवस्था

आसन को कुछ ऊँचे उठा कर पश्चिम शीर्षासन की स्थिति में लाते हैं। फिर यहाँ कुछ देर रुके रहते हैं।

इतना हो चुकने पर पद्मासन को थोड़ा और ऊपर उठा कर पेट के सामने समकोण पर लाकर कुछ देर रुकते हैं।

यह सीधे शीर्षासन का द्वितीय विकास या पश्चिम शीर्षासन की स्थिति है। यहाँ कुछ देर रुकते हैं।

तृतीय अवस्था में कुछ सेकेंड रह कर पद्मासन को बिल-कुल सीधा पीठ के साथ एक सरल रेखा में ऊँचे उठा दिया जाता है।

तृतीय अवस्था इस स्थिति में साधक काफ़ी देर तक रुक सकता है और फिर यदि व्यायामात्मक दृष्टि से विपरीत शीर्षासन कर रहा हो तो वारम्बार (८ । १० बार) इस क्रम से पद्मासन को नीचे उतार कर चरम शीर्षासन की स्थिति में ले

चतुर्थ अवस्था जाना और फिर इस चतुर्थ अवस्था में आकर रुकना (बीच में प्रत्येक अवस्था में रुककर साँस ले लेकर) होता है। यह विपरीत शीर्षासन की पूर्णावस्था है। एक प्रकार से यही सीधे शीर्षासन का प्रथम विकास (उर्ध्व या उत्थित पद्मासन) है।

हम कह चुके हैं कि विपरीत शीर्षासन की पूर्णावस्था उर्ध्व पद्मासन में ही पहुँच जाती है, और वहीं, साधक यदि आध्यात्मिक

अंतिम अवस्था हुआ, तो इच्छानुसार रुका रहता है। और यदि व्यायामी हुआ तो वारम्बार पद्मासन को सीढ़ी-दर सीढ़ी नीचे ऊपर शक्ति भर, करता चलता है। फिर जब आसन तोड़ना होता है तभी वह बने हुये पद्मासन को वहीं खोल कर (बिना हाथ लगाये) दोनों पाँवों को सीधे ऊपर तान देता है। यह वह एक प्रकार से सुस्ताने के लिये करता है। कुछ सेकंड इस अवस्था में रह कर वह हाथ का गस्सा खोल कर ज़मीन पर सीधे बैठ जाता है। वास्तव में विपरीत शीर्षासन या सीधे शीर्षासन के यह तीन या चार विकास व्यायामात्मक क्रियायें हैं। इन से बढ़कर पेट और पीठ की पेशियों का व्यायाम नहीं हो सकता। इसे हठ-योगी लोग शरीर की सारी पेशियों और नसों को निर्दोष तथा सक्त बनाने के लिये करते हैं। और काफी दिन तक इसे साधने के बाद शरीर की सब पेशियों पर एक विलक्षण अधिकार या नियंत्रण साधक को हो जाता है।

अब हम शीर्षासन के लाभ तथा इसके चिकित्सात्मक प्रयोगों का उल्लेख करते हैं। लाभ हम साधारण शीर्षासन के ही बता रहे हैं। शीर्षासन के विविध विकास तथा विपरीत शीर्षासन के लाभों के बारे में, जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, 'अधिकस्य अधिकं फलं' वाला सिद्धांत समझना चाहिये।

शीर्षासन आसन व्यायाम पद्धति का प्रथम और साथ ही संभवत: (जिसको मुआफ़िक पड़ जाय) सब से महत्वपूर्ण व्यायाम है। एक पाश्चात्य व्यायाम आलोचक ने शीर्षासन का "पेनेशिया फ़ॉर ऑल ईविल्स" (सब व्याधियों या शिकायतों के लिये अमृत) कहा है और इसी नाम से अकेले शीर्षासन पर एक पुस्तक लिख डाली हैं। विज्ञानजीवी पाश्चात्य जगत् इस आसन के गुणों पर जब इतना मुग्ध है, और प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक रीति से इसके गुणों की पूरी परीक्षा कर, जब इस आसन का इतना क़ायल है, तब इसके लाभों का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। हमारे देश के प्राचीन योगियों ने इसका आविष्कार जिस समय किया था उस समय पाश्चात्य जगत् संभवतः अज्ञानाधंकार में डूबा हुआ था; या कम से कम यह तो निश्चय है कि आधुनिक विज्ञान का विकास उस समय नहीं था। अस्तु -

लाभ

शीर्षासन का सब से पहला प्रभाव आँख, कान आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रियों पर पड़ता है जिससे मस्तिष्क तथा तत्सम्बन्धी विशेष इन्द्रियाँ अपना व्यापार दीर्घकाल तक सुचारु रूप से करती चलती हैं। उल्टे खड़े हो जाने पर बहुत प्रचुर परिमाण में रक्त संचार सिर की सारी इंद्रियों तथा सिर के नीचे के हृदय, फुस्फुस आदि अवयवों को मिल जाते हैं, जिसके फल स्वरूप वहां के सारे सेल ताज़े और सजीव हो उठते हैं। इस का परिणाम यही होता है कि साधक को कभी कोई शिकायत नहीं होती। शूल और दिमाग़ दोनों अगर ठीक हैं तो कोई रोग नहीं हो सकता। दिमाग़

और दिल दोनों को एक साथ ही निर्दोष बनाता है शीर्षासन। इसका कारण यह है कि सिर के बल खड़े होने पर कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण अंतः-स्त्राव ग्रंथियों तथा 'पिच्यूटरी' और 'पीनियल' नामक गिल्टी को ताज़ा रक्त प्रचुर परिमाण में मिल जाता है जिससे उनका स्वास्थ्य सदा नवीन बना रहता है। थाइराइड नाम की गिल्टी पर शीर्षासन का अच्छा प्रभाव पड़ता है। पर उतना नहीं। थाइराइड के लिये सर्वाङ्ग और मत्स्यासन हैं।

दिल के नीचे पाचन-क्रिया सम्बन्धी अवयव हैं। उल्टे खड़े होने पर इनको भी नसों के द्वारा पर्याप्त परिमाण में ताज़ा खून मिल जाता है जिससे यकृत और आमाशय की क्रिया में सजीवता आजाती है और इनके बाद विसर्जन सम्बंधी अवयव, आँतें, गुर्दे तथा मलाशय आदि भी सचेत हो कर अपना व्यापार सुचारु रूप से करने लगते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शीर्षासन का कल्याणकारी प्रभाव दिमाग़ और दिल के साथ ही समूचे स्नायु-संस्थान, पाचन-संस्थान और विसर्जन सम्बन्धी अवयवों पर पड़ता है जिससे मनुष्य के सारे शरीर का स्वास्थ्य उत्तम हो जाता है। अंतःस्त्रवा ग्रंथियों के महत्व के सम्बन्ध में हम पिछले अध्यायों में कह चुके हैं। अच्छे स्वास्थ्य के लिये इनको अच्छी हालत में रखना नितांत आवश्यक है। शीर्षासन का बहुत सुन्दर प्रभाव ख़ास-ख़ास सभी अंतः स्त्रवा ग्रंथियों पर और दिमाग़ की गिल्टियों पर पड़ता है और फलतः साधक एक दीर्घ काल तक युवा रह सकता है। क्योंकि यह अब सिद्ध हो चुका है कि जिसकी ये ग्रंथियाँ और गिल्टियां नवीन रस की प्राप्ति से स्वस्थ और सबल रहती हैं उनके ऊपर रोग या बुढ़ापे का हमला नहीं हो सकता।

शीर्षासन मुख्य सभी संस्थानों को स्वस्थ बनाता है। ख़ास कर स्नायु और पाचन संस्थान को। और इन्हीं में कोई गड़बड़ी आने पर रोग होते हैं। और इन संस्थानों में जब कोई व्यतिक्रम आ ही जाय तो उसे करने के लिये शीर्षासन सब से सुगम उपाय है।

चिकित्सात्मक प्रयोग

स्नायविक दौर्बल्य

आजकल ७५ फी सदी, मुख्यतः सुशिक्षित लोग, स्नायविक दौर्बल्यसे परीशान हैं। अँग्रेज़ी में इसे 'न्यूरस्थनियां' तथा 'नर्वस ब्रेकडाउन' आदि नामों से पुकारते हैं और इसी के बढ़ जाने पर चक्कर, भ्रम, मूर्छा उन्माद तक हो जाते हैं। यह सभी ख़ास दिमाग़ की गड़बड़ी से होते हैं, क्योंकि समूचे स्नायु संस्थान का 'स्विचबोर्ड' और 'बैटरी' मस्तिष्क के अंदर ही है। इस स्विचबोर्ड में ताज़े रक्त का संचार जब कम हो जाता है तभी ये सब गड़-बड़ियाँ शुरू होती हैं और आरम्भ में ये लक्षण दिखाई पड़ते हैं—सिर भारी रहना, काम में जी न लगना, या जल्दी थक जाना, प्रसन्नता और स्फूर्ति का अभाव, उत्साहहीनता और ज़रा-ज़रा-सी बात पर मिजाज़ ख़राब होना। इन में से कोई भी दिखाई पड़ते ही सावधान हो जाना चाहिये और शीर्षासन आरंभ कर देना चाहिये। क्योंकि दिमाग़ सम्बन्धी सारी शिका-यतें दूर करने के लिये शीर्षासन की क्रिया सर्वोपरि है।

कब्ज़ियत

स्नायु-संस्थान के बाद ही पाचनसंस्थान का नंबर है और बदहजमी और इसकी क्रियाओं में कोई गड़बड़ी होते ही या तो हाज़मा बिगड़ जाता है या कोष्ठबद्धता या क़ब्ज़ियत पकड़ लेती है। आमतौर से दोनों साथ ही चलते हैं। शीर्षासन द्वारा पाचनसंस्थान की क्रिया भी शुद्ध हो जाती है। साथ ही लिवर "यकृत" प्लीहा और गुर्दे की भी सभी शिकायतें शीर्षासन से दूर हो सकती है।

आंत उतरना

'हार्नियाँ' या आँत उतरने की बीमारी में भी शीर्षासन प्रायः जादू का काम करता है बशर्ते कि साधक बहुत कमजोर नहीं है।

वीर्य-दोष

वीर्य का पतलापन, धारणा-शक्ति का अभाव तथा स्वप्नदोष आदि में भी शीर्षासन का विलक्षण प्रभाव देखा गया है। पर ये रोग देर में जाते हैं।

दमा खाँसी

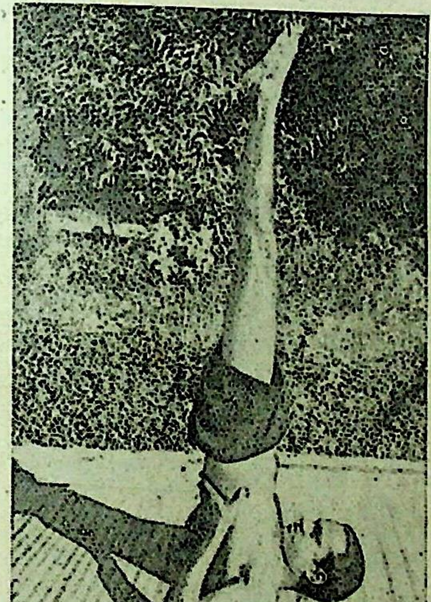
दमा और पुरानी खाँसी आदि रोगों में भी शीर्षासन से अच्छा लाभ होता है।

सर्वांग-आसन

शीर्षासन का ही छोटा भाई है सर्वाङ्ग-आसन। जो किन्हीं कारणों से शीर्षासन नहीं कर सकते उनके लिये यह सर्वाङ्ग

नाम

आसन है। इसको 'सर्वाङ्ग' इसीलिये कहा गया है कि थाइरॉइड गिल्टी के द्वारा यह सारे शरीर को प्रभावित करता है। थाइरॉइड शरीर की सबसे महत्वपूर्ण गिल्टी है और सारे शरीर को सदा स्वस्थ रखने के लिये थाइरॉइड को स्वस्थ रखना



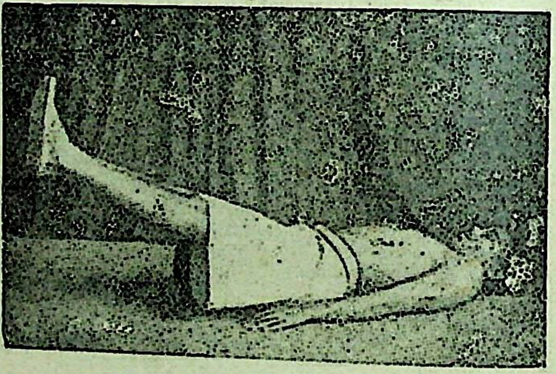
(चित्र नं० १८)

सर्वांग-आसन

आवश्यक है। यह आसन थाइरॉइड को ही विशेषरूप से प्रभावित करता है और ख़ास कर इसके बाद ही यदि 'मत्स्य' आसन कर लिया जाय तो थाइरॉइड का पूरा व्यायाम होकर उसके सारे सेल नवीन रक्त के संचार से उत्फुल्ल हो उठते हैं।

विधि

आसन पर पीठ के बल लम्बे लेट जाइये, हाथ बग़ल में रहें और दोनों पाँव एकदम सीधे। सारे शरीर को शिथिल (ढीला) रखिये। फिर साँस भर कर दोनों पाँव धीरे धीरे उठाकर (घुटने मुड़ने न पावें) ३०° के कोण तक लाइये और वहाँ ४।५ सेकेंड रुक कर फिर से साँस छोड़ कर भर लीजिये।



(१) पहली अवस्था

इसके बाद तीस डिग्री और पाँवों को उठाइये कि पाँव शरीर से समकोण पर आ जायं। यहाँ फिर पूर्ववत् रुकिये। (तीसरी अवस्था)

अब पाँवों को और सिर की ओर उतारिये। यहाँ से पीठ के पास नितंब से धड़ ज़मीन छोड़नी शुरु करेगी और हाथों का थोड़ा सहारा

लिया जायगा (चौथी अवस्था) पाँवों को क्रमशः ६०° और फिर १२०° पर लाकर पहिले की तरह कुछ सेकेंड रुकिये।

इसके बाद सर्वांग की पूर्णावस्था होगी, यानी धड़ के साथ दोनों पाँव बिलकुल सीधे ऊपर तान दिये जायँगे और कुहनी से दोनों हाथ

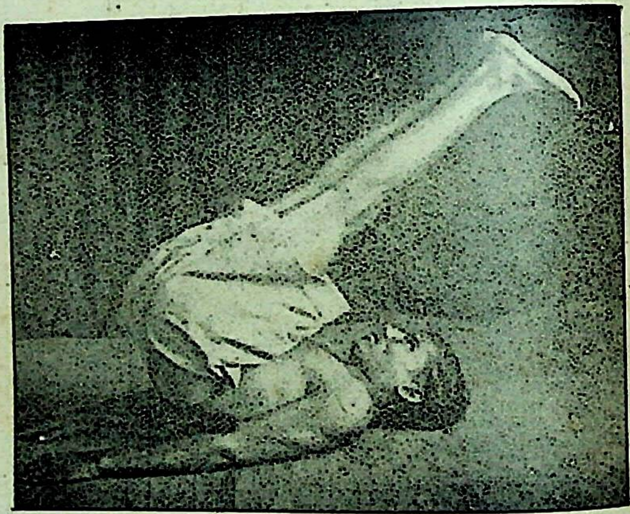


(२) दूसरी अवस्था

मोड़ कर पीठ को सहारा दे दिया जायगा। हाथों से पीठ को इस तरह ठेल सा दिया जाता है कि छाती ठुड्डी से सँट जाय और जालंधर बंध लग जाय (पूर्णावस्था का चित्र देखिये)। हाथों को वहाँ बराबर जमें रहने दीजिये जिससे धड़ कहीं से टेढ़ा न हो। क्योंकि यथा संभव सारे शरीर को सीधा रखना आवश्यक है और इस प्रकार कि सारे शरीर का बोझा गर्दन पर पड़े जिससे कि पूर्ण रक्त संचार थाइरॉइड को मिले। यही पूर्णावस्था है। नेत्र बंद या नासाग्र पर रख सकते हैं। जब तक इस आसन

में रहिये ध्यान थाइरॉइड पर केंद्रित रहे और यह भावना रहे कि थाइ-रॉइड के द्वारा आपका सारा शरीर स्वस्थ और सबल हो रहा है।

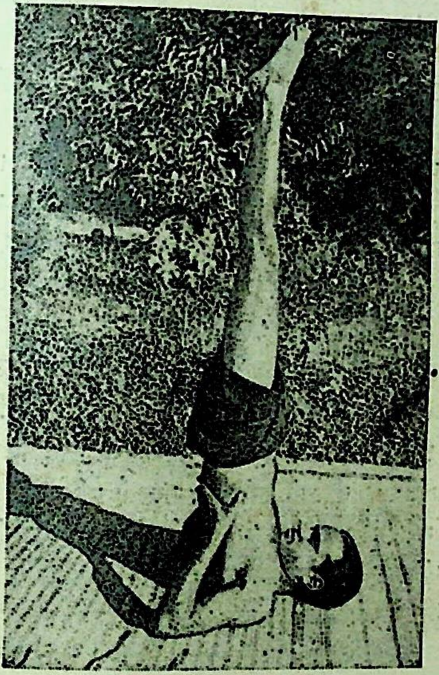
कुछ योगी सर्वाङ्ग आसन की पूर्णावस्था में भी हाथ फैला हुआ ही रखते हैं। यानी पूरा आसन लगा कर पीठ से हाथ को छोड़ देते हैं और उन्हें पूर्ववत् ज़मीन पर फैला देते हैं और इसको सर्वाङ्ग की पूर्णावस्था मानते हैं। पर इसको हम सर्वाङ्ग आसन का एक विकास कह सकते हैं। यदि हाथ हटा लेने से आसन डाँवाडोल न हो और अभीप्सित समय



(३) तीसरी अवस्था

तक पाँव और धड़ एक सरलरेखा में बिना हाथों का सहारा लिये रखे जा सकें तो इसका अभ्यास शुरू किया जा सकता है पर पहले साधारण सर्वाङ्ग भली भाँति सिद्ध कर लेना चाहिये।

यदि अकेले सर्वाङ्ग ही साधना हो तो इसकी अवधि २५ मिनट तक ले जा सकते हैं और अंत में ५ मिनट इसके ऊपर कहे हुये विकास में लगाकर कुल ½ घंटे का समय इसमें दिया जा सकता है; पर ऐसी अवस्था में जितना समय इसमें दिया जाय लगभग उतना ही इसके बाद शवासन में देना चाहिये और दोनों के बीच अंततः ५ मिनट का मत्स्यासन



(४) चौथी अवस्था

कर डालना चाहिये । ऐसा करने पर सर्वाङ्ग आसन के पूर्णलाभ निश्चित हैं ।

भँज जाय तो जितना समय साधारण सर्वाङ्ग में जाय उसका चौथाई विकसित सर्वाङ्ग (यानी बिना हाथ के सहारे सर्वाङ्ग को लगाये रखना) में भी देना चाहिये।

पूरे समय तक आसन हो चुकने पर मामूली हालत में आने के लिये जिस तरह पाँवों को सीढ़ी दर सीढ़ी चार अवस्थाओं में पाँच-पाँच सेकेंड रुकते हुये पाँवों को चढ़ाने की विधि बताई गई है उसी प्रकार हर अवस्था में रुकते हुये पाँवों को ज़मीन पर लाइये। सबसे पहले हाथों को (अगर वे पीठ से सटे हुये हैं) पीठ से छुड़ा कर बग़ल में फैलाइये। एकदम से पाँवों को उतार देना ठीक नहीं।

व्यायामात्मक लाभ

हम सर्वाङ्ग को शीर्पासन का छोटा भाई कह चुके हैं। शीर्पासन के ख़तरे इसमें नहीं हैं पर गुण लगभग उसके बराबर ही हैं और 'कंठमणि' (थाइरॉइड) को तो यह शीर्पासन से कहीं ज़्यादा प्रभावित करता है। कंठमणि का विशेप प्रभाव शुक्र-प्रणाली पर पड़ता है। जिसके वीर्य में कोई ख़राबी है। उसकी कंठमणि ठीक अवस्था में नहीं रह सकती और फिर सारे शरीर का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। कंठमणि फिर सचेत और स्वस्थ होते ही यौन व्यापार (दाम्पत्य-शक्ति) में कोई शिकायत नहीं रह जाती शुक्र अथवा वीर्य ही शरीर का राजा है यदि इसमें कोई गड़बड़ी है तो सारे शरीर में तरह-तरह की ख़राबियाँ पैदा हो जाती हैं। स्वास्थ्य कामी को कंठमणि को संतोपजनक अवस्था में रखना पहला कर्तव्य है और इसके लिये सर्वाङ्ग से बढ़ कर कोई क्रिया नहीं।

इस आसन से गर्दन की मांसपेशियों और ग्रंथियों में खिंचाव उत्पन्न होता है जिससे वहाँ की सारी स्नायुओं में नवीन रक्त का संचार हो जाता है।

आसनों का पूरा कोर्स करने वाले के लिये ५।६ मिनट का सर्वाङ्ग, ३।४ मिनट का मत्स्यासन काफ़ी होगा और जब आसन भली-भाँति

आँख, कान, नाक और दिमाग़ जैसी सुकुमार इंद्रियों को गर्दन के रास्ते बहुत ठीक परिमाण में नवीन रक्त की प्राप्ति होती है और गर्दन के ऊपर की सभी इंद्रियों का बहुत अच्छा व्यायाम हो जाता है और वे पुष्ट तथा सबल रह कर दीर्घकाल तक अपना व्यापार सुचारु रूप से करने में सफल होती हैं।

बुढ़ापा और नपुंसकता के लक्षण सर्वाङ्ग आसन से दूर किये जा सकते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों के लिये यह आसन समान रूप से लाभकारी है।

चिकित्सात्मक प्रयोग

मंदाग्नि, अजीर्ण तथा क्षुधाहीनता में भी सर्वाङ्ग से विशेष लाभ होता है। प्लीहा और यकृत के दोष धीरे-धीरे इस आसन से दूर हो जाते हैं।

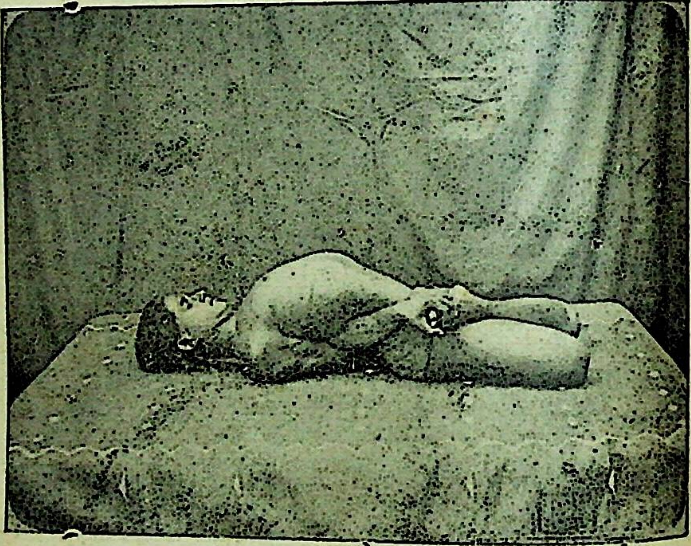
क़ब्ज़ियत में यह आसन मत्स्यासन के साथ आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाता है।

आमतौर से जो निषेध शीर्षासन के लिये कहे गये हैं वही सर्वाङ्ग आसन में भी लागू हैं।

निषेध

मत्स्यासन

इस आसन को लगाने पर मनुष्य की आकृति ऐसी बन जाती है जैसे जल पर तैरती हुई मछली ('मत्स्य' संस्कृत में मछली को कहते हैं) इसी से इस का नाम 'मत्स्य' आसन रखा गया है।



(चित्र नं० १६)

हम कह चुके हैं कि सर्वाङ्गासन का पूरा लाभ उठाने के लिये उस के बाद ही मत्स्यासन करना चाहिये इसी से यहां उस की विधि लिखी जा रही है।

पद्मासन लगा कर बैठ जाइये। पद्मासन की विधि पहले ही कही जा चुकी हैं। कुछ योगियों के अनुसार मत्स्यासन के पाँवों का मोड़ पद्मासन से कुछ भिन्न होता है। जो हो, पर मोड़ लगाने के बाद कोई ख़ास फ़र्क नहीं दिखाई पड़ता। 'पद्मासन' नाम से यदि इस मोड़ को न पुकारना पसन्द करें तो यों कीजिये। पहले सीधे पाँव फैला कर बैठ जाइये या पीठ के बल चित लेट जाइये, फिर एक पाँव, संभवतः दाहने को मोड़ कर उस के सामने की जंघामूल पर लगा दीजिये, तलवा उल्टा रहे। ठीक इसी तरह बायां पाँव घुटने से मोड़ कर दाहनी जंघामूल पर लगाइये (चित्र देखिये) फिर अगर बैठे हों तो पीठ के बल लेट जाइये और फिर शरीर का भार कुहनियों पर रखते हुये धड़ और सिर को जितना धनुषाकार उठा सकें उठाइये। गर्दन का मोड़ सर्वाङ्ग के गर्दन की मोड़ से ठीक उल्टा होगा (चित्र देखिये) सिर का पिछला भाग सिर्फ़ जमीन छुए रहेगा। पीठ तलवार की तरह तनी रहेगी और नितंब तथा सिर के बीच पुल सा बना देगी। इस पुल के बनाने में (यानी पीठ को यथासंभव ऊपर वक्राकार तानने में) लेट कर हाथों को सिर के पीछे ले जाकर धड़ को उठाने में मदद ली जा सकती है।

विधि

अब आसन लग गया, सिर्फ़ एक काम और बाक़ी है। दाहने हाथ से दाहना और बाएं से बायाँ पाँव इस प्रकार पकड़ लीजिये कि कुहनियां ज़मीन पर रहें। यही है मत्स्यासन की पूर्णावस्था।

कुछ योगी हाथों से पैर थाँमने की बजाय उन्हें समेट कर सिर के पीछे गस्सा सा बाँध कर रख देना पसंद है। पर ऐसा उन्हें करना चाहिये जो व्यायामात्मक की अपेक्षा आध्यात्मिक उत्कर्ष साधन की दृष्टि से इस आसन को साधना चाहते हैं। क्योंकि इस प्रकार सिर के पीछे हाथ रखने से चित्र एकाग्र ज़्यादा होता है और इस तरह हाथों से पैर थाँमने पर कसरत

ज़्यादा होती है। इस में सर्वाङ्ग आसन का चौथाई समय देना काफ़ी होता है।

लाभ

सर्वाङ्ग आसन की भाँति मत्स्यासन का भी मुख्य उद्देश्य है कंठमणि के स्वास्थ्य को ठीक करना। सर्वाङ्ग सीधी ओर से तथा मत्स्य उल्टी ओर से गर्दन की मांस पेशियों को मोड़ता है। पर गर्दन के साथ ही पीठ, पेट और पेड़ू की सारी पेशियों और नसों का अच्छा ख़ासा व्यायाम इस आसन से हो जाता है।

कंठमणि के साथ यकृत और आमाशय की एक तरह की मालिश सी हो जाती हैं मत्स्यासन से, और इसका फल यह होता है कि परिपाक और विसर्जन क्रियाएँ भी ठीक हो जाती हैं।

विपरीत-करणी

इस आसन को 'विपरीत' करणी इस लिये कहा जाता है कि इस में शरीर को 'विपरीत' यानी 'उलट' कर खड़ा कर दिया

नाम

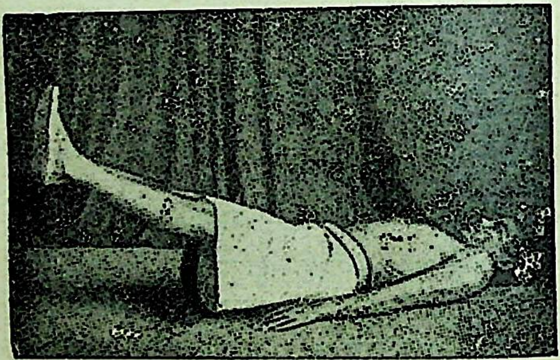
जाता है। शरीर को उलट कर रखने वाले कुल तीन आसन हैं जिन में से दो (शीर्ष तथा सर्वाङ्ग) का वर्णन हो चुका, अब केवल यही शेष है। प्रश्न हो सकता है कि विपरीत (संस्कृत में 'विपरीत' शब्द के अर्थ होते हैं 'उलटा हुआ') तो ये तीनों ही हैं फिर इसी एक को 'विपरीत' आसन क्यों कहा गया? जहां तक हम समझते हैं, योगियों ने प्रत्येक आसन को वही नाम दिया है जिस से शरीर के जिस भाग का विशेष संस्कार होता है। शीर्षासन में मुख्यतः सिर के अंतर्गत मस्तिष्क आदि इन्द्रियों का पूर्ण संस्कार हो जाता हैं। सर्वाङ्ग जैसा कि इसका नाम है, कंठमणि के संशोधन द्वारा शरीर के सारे अंगों का संस्कार करता है। पर विपरीत क्रिया का पूरा लाभ इसी आसन से होता है। इस में शीर्ष तथा सर्वाङ्ग दोनों आसनों के गुण घुले मिले हैं। योगियों ने तो छ महीने के विपरीत करणी (यदि उसके साथ खेचरी मुद्रा और जिह्वाबंध लगे हुये हों) के अभ्यास द्वारा नवयौवन तथा दीर्घकाल तक इसकी साधना द्वारा वार्धक्या तथा मृत्यु तक पर विजय प्राप्त करने का दावा किया है।

उन के यह दावे कहाँ तक सच हैं इस की सत्यता पर विचार करने का यह स्थान नहीं है, पहले इस आसन की विधि देखिये:—

विधि

विपरीत करणी और सर्वाङ्ग आसन की विधि में थोड़ा ही भेद है। पहले सर्वाङ्ग की विधि से ही चित लम्बे लेट जाइये। फिर उसी प्रकार सीढ़ी दर सीढ़ी पाँच पाँच सेकेंड रुकते हुये तीस डिग्री, और फिर दूसरी बीस डिग्री तक पांवों को धीरे धीरे (जितना धीरे हो सके) ऊपर तानिये। घुटने

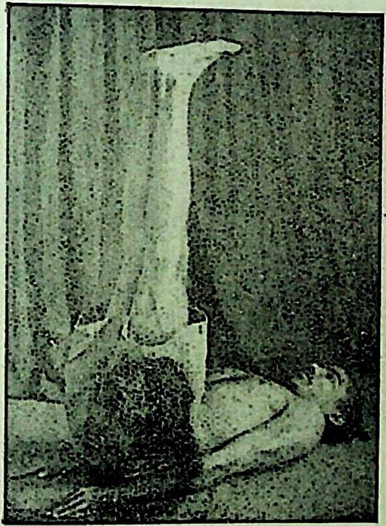
तने रहें, कहीं से मुड़ने न पावें। यहाँ पर कुछ चण रुक कर पांवों को और ऊपर तानिये कि धड़ से समकोण तक पहुँच जायँ। हाथ अभी तक बग़ल से पट होंगे, फिर पाँवों को क्रमशः दस दस सेकेंड रोकते और हर एक सीढ़ी पर ताज़ी साँस फेफड़ों में भरते और पिछली साँस बाहर फेंकते हुये, ६०० पर और फिर १२०° (सर्वाङ्ग की चौथी सूरत) तक पाँवों



(चित्र नं० २०)

को ले जाइये। अब यहां से विपरीत करणी सर्वाङ्ग से अलग होगी। अब हाथों को श्रोणि के दोनों ओर (चित्र देखिये) सहारे के लिये जमा दीजिये और पैर बिलकुल सीधे कर लीजिये। मामूली साँस लेते हुये कुछ चण

ठहरिये। अब इसी के बाद विपरीतकरणी की विशेष या पूर्णावस्था बनती हैं। पाँवों को उठे हुये शरीर के धड़ से बिलकुल सीधे तान दीजिये। हाथों पर शरीर का पूरा बोझा आजाता है और पांवों की स्थिति सर्वाङ्ग का पूर्णावस्था की तरह जमीन से समकोण नहीं बनाती बल्कि कुछ आड़ी तिरछी ऊपर की ओर रहती है। गर्दन कंधे तथा बाहमूल्य के पृष्ठभाग ज़मीन पर पड़े रहते हैं। ठुड्डी सर्वाङ्ग की तरह छाती से नहीं लगती, क्योंकि पाँव तिरछे होने के कारण छाती ठुड्डी से काफ़ी दूरी पर पड़ जाती हैं। आँखें

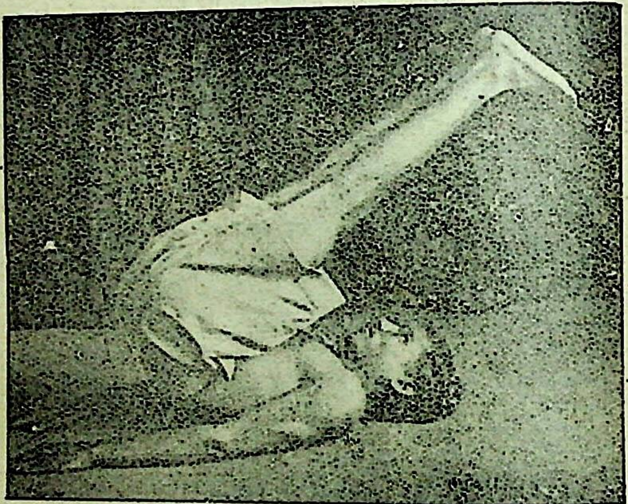


(चित्र नं० २१)

या तो बंद रखिये या पाँवों के अंगूठों पर केन्द्रित कर मन को ध्यानस्थ कर लीजिये। इस के बाद जिह्वाबंध लगाइये। बस यही है इस आसन की पुर्णावस्था।

जीभ को उलट कर जितने पीछे ले जा सकें ले जाइये और कौआ या टोटी जहां पर हैं (तालू के पीछे) वहां पर सँटाने की कोशिश कीजिये। योगियों का कहना है कि विपरीत करणी में ललाट से अमृत टपकता है जिस का आस्वादन उल्टी हुई जिह्वा से करना चाहिये और इस अमृत के आस्वादन सेही साधकः

जिह्वाबंध

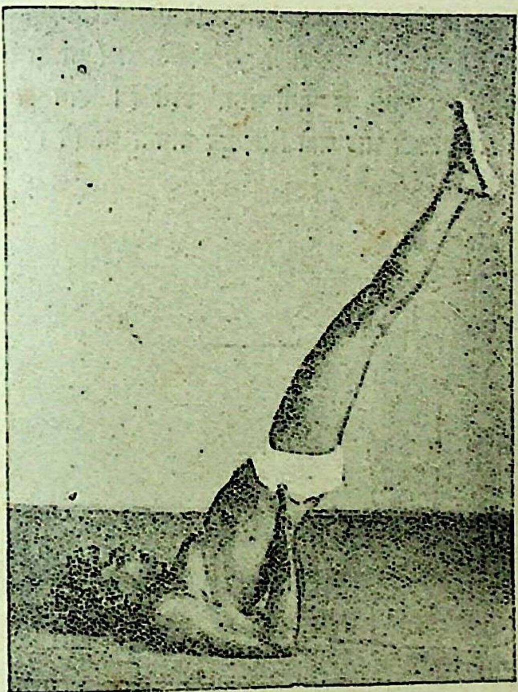


(चित्र नं० २२)

को चिरयौवन तथा अमरत्व आदि सिद्धियां प्राप्त होती हैं। जिह्वाबंध के बारे में विशेष 'सिंहासन' के सिलसिले में बताया जायगा। इस आसन को १ मिनट से आरंभ कर ६ मिनट तक कर सकते हैं विपरीत करणी के व्यायामात्मक लाभ लगभग वही हैं जो सर्वाङ्ग के। हाँ इसके विशेष

व्यायामात्मक लाभ

लाभ वही (चिरयौवन अमरत्व आदि) है जिन का उल्लेख ऊपर हो चुका है। पर इन की आशा उन्हीं साधकों को रखनी चाहिये जो कि कम से कम एक वक्त (संभवतः सायंकाल) केवल इसी आसन को सिद्ध करने में काफ़ी



(चित्र नं० २३)

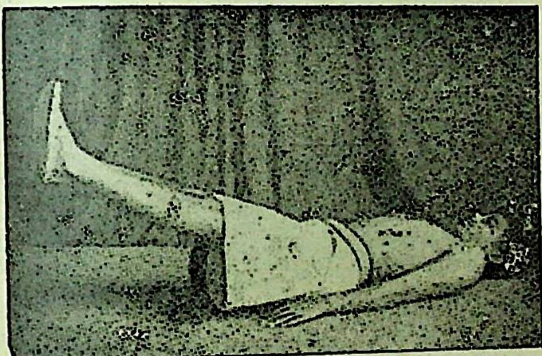
ज़्यादा समय ($\frac{१}{२}$ घंटे से १ घंटे तक) दें और नियम से २-३ साल करते चले जायं।

इस में और तो कोई कठिनाई नहीं है; सिर्फ़, ४-५ मिनट के बाद (शुरू के कुछ महीनों तक) दोनों हाथ (खास कर कुहनी के पास पीछे की ओर) फटने लगते हैं और विवश हो कर आसन तोड़ना पड़ता है। पर धीरे धीरे यह अवस्था जाती रहती हैं। छः महीने बाद हाथों में इतनी शक्ति हो जायगी कि कम से कम आधे घंटे की विपरीतकरणी अनायास कर सकते हैं। योगियों की भाषा में इस स्थिति को (या हाथों को इस शक्ति प्राप्ति को) हाथों का 'पानी मरना' कहते हैं। हाथ का पानी मरने के बाद विपरीतकरणी आठ आने सिद्ध हुई जानना चाहिये।

हलासन

नाम — इस आसन को 'हल' आसन इस लिये कहते हैं कि इस की पुर्णावस्था में मनुष्य की शकल हल की सी हो जाती है।

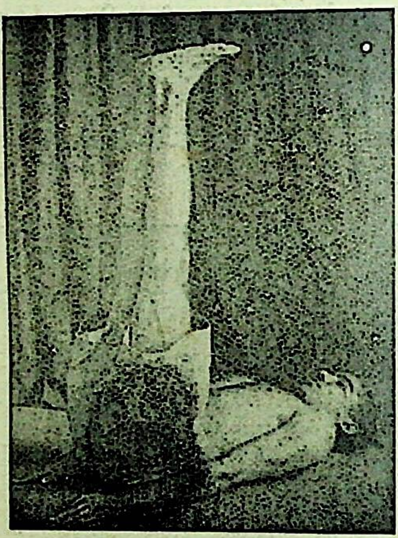
विधि — पहले सर्वाङ्ग आसन की प्रारम्भिक चार अवस्थायें बनाइये यानी सीधे चित लेट जाइये दोनों हाथ बगल में रक्खे हुये और फिर क्रमशः पाँवों को सीधे (घुटने बिलकुल न मोड़ते हुये) क्रमशः तीस, साठ, नव्वे और एक सौ बीस डिग्री के



(चित्र नं० २४)

कोण पर पाँच-पाँच सेकेंड (कम से कम, और अगर तकलीफ़ हो तो हर एक सीढ़ी पर दस-दस सेकेंड रुकिये और साँस ताजी करते चलिये) रोकते हुये ऊपर तानिये। यहां तक इस की और सर्वांग की विधि समान है। इस के बाद से हल आसन की विशेष क्रिया शुरू होती है। सर्वांग में पाँव सीधे ऊपर आसमान की ओर ताने जाते हैं पर इस में पाँव नीचे सिर की

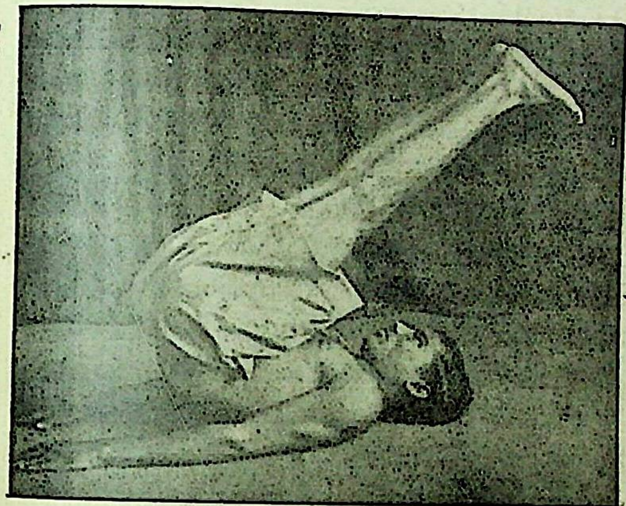
ओर उतारे जाते हैं। धीरे धीरे पाँवों को उतारते हुये सिर के पीछे ज़मीन से मिला दीजिये। शुरू में जब तक रीढ़ में काफ़ी लोच नहीं है पाँव ज़मीन तक नहीं जायंगे। अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाइये। अवस्था के अनुसार या पेट की मुटाई के अनुसार पाँवों को ज़मीन छुलाने में महीने दो महीने तक



(चित्र नं० २५)

लग सकते हैं। पर पहले ही ज्यादा ज़ोर मत दीजिये। रीढ़ जितनी आसानी से झुके और पेट जितना खले उतने ही से संतोष करने चाहिये। आज से कल, और कल से परसों रीढ़ ज़्यादा अपने आप झुकेगी और साथ ही आपको आनन्द आता जायगा, क्योंकि ज्यों-ज्यों रीढ़ लचीली होती जायगी बदन हलका और फुर्तीला होता चलेगा। हलासन का खास मतलब ही यही है।

पाँवों को जमीन पर रखते ही ध्यानात्मक दृष्टिकोण से हलासन की पूर्णावस्था पहुँच जाती है, पर शर्त यह है, पैर और घुटने सीधे रहते हुये सिर (घुटने के पास से) को छूते हुये ज़मीन को छूने लगें। पर व्यायामात्मक दृष्टि से यह हलासन की पहली अवस्था है। (चित्र देखिये)

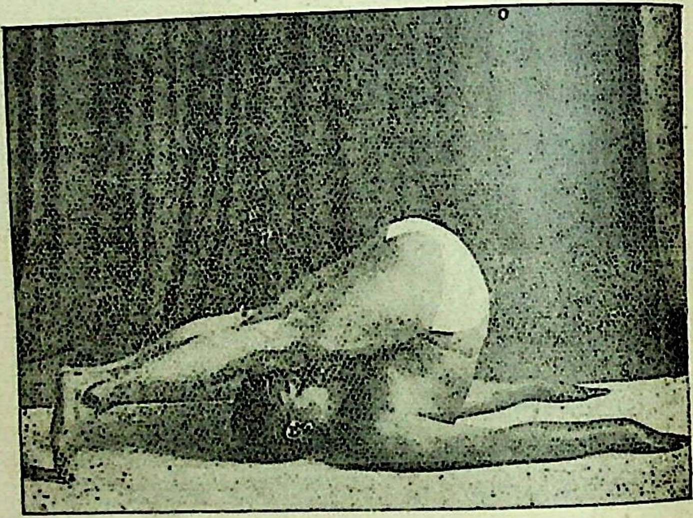


चित्र नं० २६

जब यहां तक अभ्यास हो जाय तो यहां तक पहुँचने के बाद कुछ क्षण रुकिये और फिर अँगूठों को थोड़ा और आगे खिसकाइये और कमर को उठाइये। यहां पर रीढ़ पर और ज़्यादा तनाव का अनुभव होगा। यह हलासन की दूसरी अवस्था है। इससे घुटने सिर को छोड़ कर ऊंचे तन जायंगे।

दूसरी अवस्था में कुछ क्षण रुक कर अँगूठे को और आगे खिसकाइये यहां तक कि उसके आगे खिसकाये न जा सकें। अंतिम सीमा तक अँगूठों को खिसकाने के साथ ही घुटने सिर से काफ़ी दूर आगे को हो जायंगे

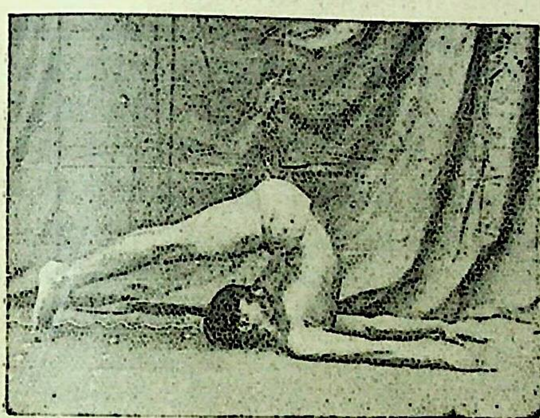
और कमर बिलकुल सिर के ऊपर आ जायगी। इसी के बाद इस आसन की पूर्णावस्था आ रही है। पर इस को पूर्णावस्था न कह कर हम हलासन की तीसरी अवस्था कहना ही पसन्द करेंगे। क्योंकि यहां साधक कुछ क्षण दम लेकर पूर्णावस्था के लिये तैयार होता है। हाथ अभी तक बगल ही में है।



चित्र नं० २७

तीसरी अवस्था में कुछ क्षण (५-१० सेकेंड) रुक कर साँस ताजी कर हाथों को सिर के पीछे ले जाइये और सिर पर उँगलियों का गस्सा-सा बाँध कर ध्यानस्थ हो जाइये। गस्सा बाँधने के साथ ही पाँवों के अँगूठों को थोड़ा और आगे ठेलने की कोशिश कीजिये जिस से कि ठुड्डी छाती से जम कर सट जाय। सर्वांग से भी ज्यादा गर्दन का मोड़ इस अवस्था में होगा और पक्के जालंधरबँध की स्थिति में ठुड्डी गले के गढ़े में घुस

आयगी। ध्यान इस बात का रहे कि घुटने न मुड़ें और पाँव एक दम सीधे हलकी लकड़ी ('हल') की तरह बिलकुल सीधी लकीर में तने रहें। यह हलासन की पूर्णावस्था।



चित्र नं० २८

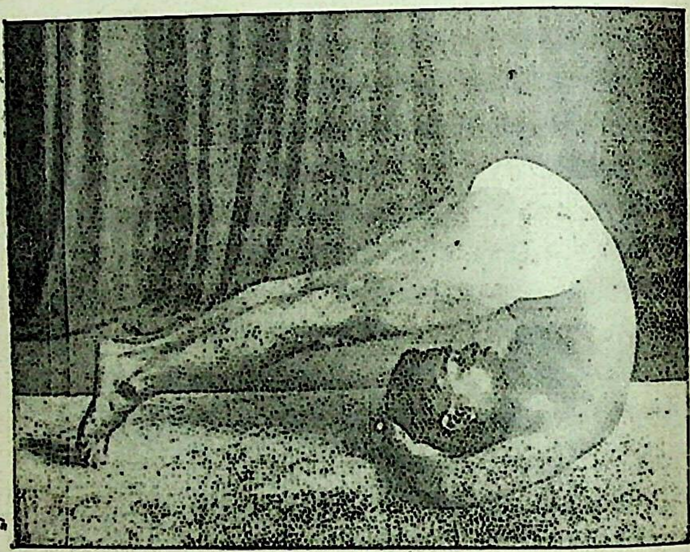
पूरा कोर्स करने वाले के लिये शुरू में हलासन की प्रत्येक अवस्था में दो दो या तीन तीन सेकेंड रुकना काफ़ी होगा और पूर्णावस्था में शुरू में ½ मिनट तक रहने की चेष्टा की जा सकती है। पूरा समय अभ्यास बढ़ाने के बाद ५ मिनट तक का हो सकता है, पर इस बीच ५-६ बार हलासन करना चाहिये। एक ही बार पूर्णावस्था में पाँच मिनट पड़े रहना (व्यायामी के लिये) ठीक नहीं। पर अध्यात्मिक साधक के लिये हलासन की प्रथमावस्था में ही देर तक (½ घंटा तक) पड़े रहना ही वाँछनीय है।

व्यायामात्मक दृष्टि से 'अर्ध-हलासन' वे लोग कर सकते हैं जो ज़्यादा मोटे या कमज़ोर हैं।

हलासन में रीढ़ का मोड़ हद दर्ज़े का होता है। इस में पूर्णावस्था

निषेध

तक पहुँचने में जल्दी कभी न करना चाहिये नहीं तो हानि हो सकती है। जहां तक आसानी से शरीर झुकता चले वहीं तक संतोष करते चलना ठीक होगा। ज़्यादा ज़ोर देना या झटका देना हानिकर है।



चित्र नं० २६

ठीक यही निषेध, भुजंग, शलभ, धनुष, पश्चिमोत्तान योगमुद्रा, पादहस्त तथा जानुशिरासन आदि जितने रीढ़ के मोड़ वाले आसन हैं, समझना चाहिये। सिद्धांत यह रहे—'जल्दी न कीजिये।'

व्यायामात्मक-लाभ

रीढ़ की लोच के लिये हलासन सर्वोत्कृष्ट व्यायाम है। यह मानी हुई बात है कि जिसकी रीढ़ जितनी ही ज़्यादा लचीली है वह उतना ही युवा और निरोग है। रीढ़ के साथ ही पेट और पीठ की समस्त पेशियों का पूरा व्यायाम हलासन द्वारा हो जाता है।

कंठमणि (थाइरॉइड गिल्टी) के स्वास्थ्य के लिये हल आसन सर्वांङ्ग की बराबरी कर सकता है। कुछ महीने लगकर करने के बाद हलासन से पीठ और पेट की मांस पेशियां सबल और स्वस्थ हो जाती हैं।

चिकित्सात्मक-प्रयोग

बदहज़मी और क़ब्जियत दूर करने के लिये ख़ास कसरत हलासन ही है।

बढ़े हुये यकृत (लिवर) और प्लीहा को ठीक करने के लिये भी हलासन बहुत सुंदर चिकित्सा है पर उसी अवस्था में जब कि ये बहुत ज़्यादा न बढ़ गये हों, क्योंकि इस अवस्था में तो हलासन का निषेध है।

एक विशेष प्रकार के बहुमूत्र तथा अन्य प्रमेहों के लिये भी हलासन विशेष गुणकारी सिद्ध हुआ है।

पर मुख्य प्रयोग इस आसन का क्षुधाहीनता (भूख की कमी) और कोष्ठबद्धता पर होता है, ख़ास कर जब कि ये शिकायतें पाचन-संस्थान की स्नायुओं की गड़बड़ी के कारण हो।

भुजंगासन

'भुजंग' शब्द के अर्थ हैं 'सर्प' इस आसन की पूर्णावस्था में मनुष्य की आकृति वहुत कुछ फन उठाये हुये महाकाय सर्प या अजगर की सी हो जाती है, इसी से इसको 'भुजंग' या 'सर्प' आसन

नाम

कहते हैं। ध्यान देने पर पता चलेगा कि योगिक आसनों के अधिकतर नाम आसनों की पूर्णावस्था में मनुष्य की आकृति जिस विशेष पशु या पत्ती से मिलती-जुलती है, इसी के अनुसार उसका नाम रक्खा जाता है। जैसे—मयूर, शलभ, सर्प आदि। कुछ वस्तुओं के नाम पर हैं जैसे 'हल' 'धनुष' आदि। और कुछ उन अंग विशेषों के नाम पर हैं, जिनका विशेष व्यायाम उस आसन द्वारा होता है जैसे—'शीर्ष' 'सर्वाङ्ग' आदि। दो एक ऐसे भी हैं जिनका नाम आविष्कर्ता योगी के अनुसार पड़ा है, जैसे अर्ध मत्स्येन्द्र। अस्तु,

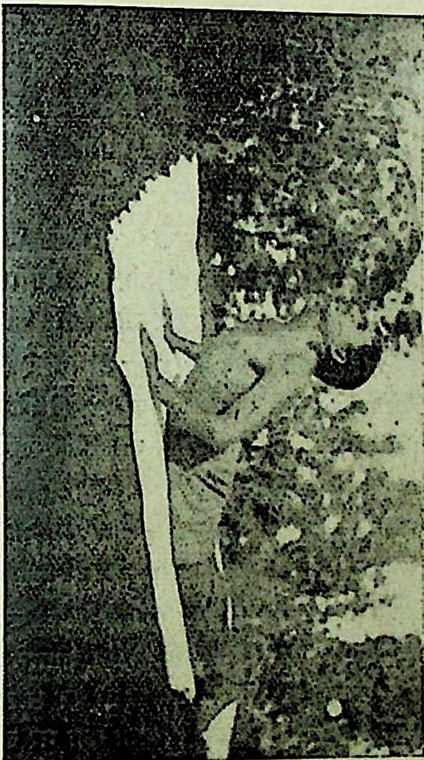
विधि

भुजंगासन की। पूर्णावस्था में शक्ल ऐसी बनना चाहिये कि जैसे कोई विकराल सर्प अपना महाकाय फन फैला कर किसी पर दाँत मारने ही पर हो।

पहले पेट के बल लेट जाइये और दोनों हाथों के पंजे सीने की बग़ल में रखिये—उँगलियाँ सटी हुई और हथेली ज़मीन पर पट रक्खी हुई हो। कुहनियां ऊपर की ओर एक ख़ास कोण बनाती हुई रहेंगी (चित्र देखिये) दोनों पाँव सटे हुये और ऊपरो हिस्सा अँगूठे के पास से उलट कर रखा हुआ हो (चित्र देखिये)

अब सिर को धीरे-धीरे ऊपर उठाना शुरू कीजिये। कोशिश यह रहे कि पेट के ज़ोर से ही सिर उठे, हाथ का सहारा बरायनाम रहे। नहीं तो पेट की कसरत ही न होगी और यह आसन ही व्यर्थ हो जायगा। सिर को उठाते समय गर्दन जितनी पीछे मोड़ सकिये मोड़ते जाइये, ठुड्डी को

बाहर निकाले हुये। अभी तक छाती ज़मीन के पास ही है, धड़ से अभी कोई ख़ास मिहनत नहीं ली गई। सिर और गर्दन काफ़ी पीठ की ओर मुड़ जाने के बाद पीठ की पेशियों को काम में लाइये, यानी उनको



चित्र नं० ३०

सिकोड़ते हुये छाती को धीरे-धीरे ऊपर तानिये। शुरू में कुछ हफ्तों तक हाथ का मामूली सहारा यहां पर लिया जायगा, पर अभ्यास हो जाने पर केवल पीठ की पेशियों के जोर से सीना ऊपर तनेगा।

पर सीने को ऊपर तानते समय एक साथ ही पूरी रीढ़ से काम न ले डालना चाहिये। गर्दन के नीचे से शुरू कर एक के बाद एक रीढ़ की हड्डियों को उठाइये और साथ देखते जाइये कि एक के बाद एक रीढ़ की हड्डियां उठ रही हैं और उन का व्यायाम हो रहा है। एक-एक करके त्रिकुटी (नितंब के ऊपर) की हड्डी जब धनुषाकर टेढ़ी हो जाय तब समझिये कि रीढ़ पूरी मुड़ चुकी। यहां तक होने पर नाभी के ऊपर से पेट और समूचा धड़ वक्राकार ऊँचे उठ जायगा। यह वक्रता जितनी ही अधिक हो सके उतनी ही पूर्णता इस आसन की समझनी चाहिये।

इस आसन की पूर्ण स्थिति में १ मिनट तक रह सकते हैं। और जब तक रुके रहें तब तक पेट की दोनों नालियों पर ही सारे धड़ का बोझ पड़ रहा है ऐसा ध्यान रक्खें। इस समय यदि इन दोनों नालियों को सिकोड़ने की चेष्टा करें तो व्यायाम में और भी पूर्णता आवेगी।

पूरे समय तक रुकने के बाद उसी प्रकार धीरे-धीरे सिर को नीचे उतारिये। सब से पहले त्रिकुटी का बोझ हल्का कीजिये फिर एक के बाद एक, सीढ़ी दर सीढ़ी रीढ़ की सारी हड्डियों का बोझ उतारते चले आइये गर्दन तक, एक दम से कभी मत छोड़िये।

आरंभ में इस आसन को करते समय साँस मत रोकिये। मामूली तौर से साँस जैसी चलती है वैसी चलने दीजिये, पर लक्ष्य यह रहे कि सिर उठाना शुरू करने से पहले साँस भर लीजिये और जब तक पूर्णावस्था में रहें तब तक साँस रुकी रहे और फिर गर्दन उतारते समय धीरे-धीरे साँस छोड़ना चाहिये। फिर नीचे आने पर दो एक साँसें ले लीजिये। फिर दुबारा उठाने के पहले पुनः फेफड़ों में ताजी हवा भर लीजिये। शुरू में तीन बार काफी होगा, फिर क्रमशः ६ बार तक ले जा सकते हैं यदि पूरा कोर्स करते हों। व्यायामात्मक दृष्टि से एकही बार में ज़्यादा देर रुकने के बजाय कई बार यह आसन करना अच्छा होता पर आरम्भ में एकबार में १० सेकेंड से ज़्यादा पूर्णावस्था भर रुकिये।

जो ज़्यादा कमज़ोर हैं या किसी वजह से बहुत थोड़ा समय दे सकते हैं वह एक-एक बार में केवल पाँच सेकेंड रुकें।

निषेध हलासन के सब निषेध इस में भी लागू हैं।

दोनों ओर, आगे, पीछे पेट, पीठ और रीढ़ के मोड़ से धड़ की सारी पेशियों का क्रम से एक बार व्यायाम और एक बार शिथिलीकरण होता है। शरीर के इस भाग में आमतौर से रक्त संचार कम रहता है पर इस आसन से पेट और पीठ की सारी पेशियों और नसों को ताज़े ख़ून की प्राप्ति काफ़ी मात्रा में मिल जाती है।

व्यायामात्मक लाभ

इस आसन का सब से ज़्यादा दबाव रीढ़ की हड्डियों और स्नायुओं पर पड़ता है। पीठ का दर्द या थकावट तो सिर्फ़ एक बार भुजंगासन करते ही दूर हो जाती है। रीढ़ की हरेक हड्डी तथा वहाँ की स्नायुओं के इकतीस जोड़ पूरा व्यायाम और साथ ही पूरा आराम पा जाते हैं। पीठ या पेट की कोई हड्डी यदि अपनी जगह से हटी हुई हो तो इस आसन से अपनी जगह पर आ जाती है।

पेट की दोनों नाड़ियों (जिनसे नौली चलती है) के पूरे व्यायाम होने के कारण भुजंगासन द्वारा सुषुम्ना नाड़ी की गति-प्रणाली में काफ़ी वृद्धि हो जाती है। सुषुम्ना नाड़ी की स्थिति ऐसी है (इड़ा और पिंगला के बीच में गुप्त रहने के कारण) कि यों उसको रक्त-संचार ही नहीं मिलता। और साधारण स्वास्थ्य क्या कुंडलिनी चक्र को जगाने के लिये पहले सुषुम्ना को उद्दीप्त करना आवश्यक है। योगी लोग मुख्यतः इसी कारण भुजंगासन का अभ्यास करते हैं। और वे बारंबार इस आसन को करने के बजाय ४-५ मिनट तक एक ही बार कुम्भक-सा लगा कर पड़े रह जाते हैं।

चिकित्सात्मक प्रयोग भोजन के बाद जिन लोगों को आलस्य घर दबाता है उनके लिये सब से अच्छा इलाज भुजंगासन है। शलभ धनुष, अर्ध-शलभ और भुजंग, इनके चिकित्सात्मक प्रयोग प्रायः समान

ही हैं। हलासन के बाद इन आसनों को करने से पूर्ण लाभ होता है।

स्त्रियों के लिये भुजंगासन ख़ास तौर से मुफ़ीद है। जो शिकायतें आमतौर से स्त्रियों के 'गुप्त-रोग' के नाम से प्रसिद्ध हैं, यानी गर्भाशय के दोष, प्रदर आदि, उनका अचूक इलाज भुजंगासन है।

यों, हलासन के जो प्रयोग हैं, उनका पूरा फ़ायदा उठाने के लिये। हलासन के बाद भुजंग, शलभ आदि कर लेने से पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती हैं।

यह अवश्य है कि भुजंग आदि रीढ़ के उल्टे मोड़ वाले आसन कंठ-मणि पर उतना प्रभाव नहीं डालते जितना कि हल, सर्वाङ्ग या मत्स्य। पर पेट, पेढ़ू और साथ ही रीढ़ को निरोग बनाने के लिये ये ही उत्कृष्ट आसन हैं।

शलभासन

संस्कृत के 'शलभ' शब्द के अर्थ होते हैं टिड्डी या पतंग। शलभासन में मनुष्य की आकृति टिड्डी की सी हो जाती है, इसी से इसको 'शलभ' आसन कहते हैं। बात यह होती है कि पेट के बल लेट कर सिर से लेकर जननेन्द्रियों तक शरीर का आधा भाग ज़मीन से छुआ हुआ रहता है और नीचे का शेष भाग ऊपर को तान दिया जाता है, और तब मनुष्य की शकल पतिंगे की सी बहुत कुछ हो ही जाती है।

नाम

इसे हम भुजङ्गासन का उल्टा इस माने में कह सकते हैं कि भुजङ्ग में शरीर का अगला भाग (सिर से नाभि तक) ऊंचे उठाया जाता है और शलभ में नाभि से नीचे का भाग ऊपर ताना जाता है।

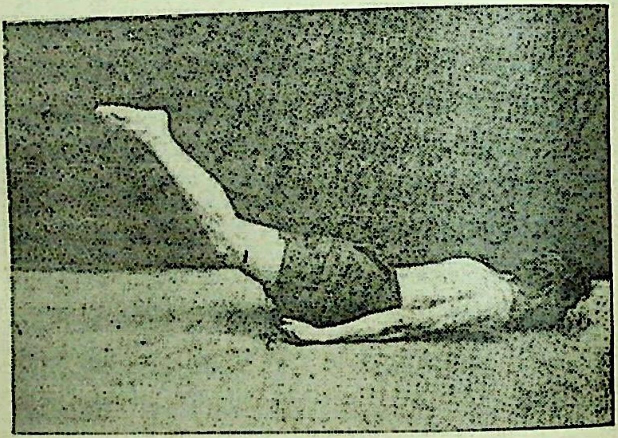
शुरुआत भुजङ्ग, शलभ तथा धनुष तीनों की एक सी हैं। यानी पहले पेट के बल सीधे लेट जाइये, दोनों हाथ बगल में हों, मुट्ठी बंधी हुई या खुली हुई जिसमें सुविधा हो, पर हथेली उलट कर रक्खी जाती है (चित्र देखिये) इस में हाथों पर पूरा ज़ोर देकर ही पैर ताने जाते हैं। हाथों को बगल में इस प्रकार जमाना चाहिये जिस से उन पर शरीर का पूरा भार आ सके। ठुड्डी, मुँह और नाक, ये तीनों ज़मीन से सटी रहें, या कम से कम केवल ठुड्डी अवश्य ज़मीन से उठने न पावे, पूर्णावस्था तक। सिर कुछ पीछे की ओर उठा हुआ रह सकता है।

विधि

इतना करने के बाद जितनी गहरी साँस फेफड़ों में भर सकें भर लीजिये और साथ ही सारे शरीर को कड़ा कर लीजिये, और फिर हाथ और सीने पर ज़ोर देकर जहाँ तक जा सके वहां तक दोनों पाँवों को ऊपर पीछे की ओर तान दीजिये। ख़ास कर कलाई पर ही उठे हुये पाँवों का पूरा भार

पड़ता हुआ जान पड़ेगा। इस अवस्था में इस बात का पूरा ध्यान रहे कि साँस थमी हुई रहे और घुटने सीधे और तने हुये, तथा साथ ही यथा-संभव दोनों पाँव बराबर और साथ-साथ उठकर ऊपर जाँय।

जब तक दम रोक सकिये रोके रहिये फिर जब देखिये कि अब नहीं रोक सकते तब धीरे-धीरे सांस को छोड़ते हुये पाँवों को नीचे लाइये और सारे शरीर को ढीला कर दीजिये। फिर दुबारा इसको करने के पहले कुछ क्षण मामूली तौर से साँस आने जाने दीजिये।



चित्र नं० ३१

शुरू में एक से लेकर तीन और फिर दम सध जाने पर सात बार तक कर सकते हैं। पर पूर्णावस्था में दम उतनी ही देर तक रोकिये जितनी देर तक आसानी से रोक सकें।

सब आसनों में सिर्फ शलभासन ही एक ऐसा आसन है जिसमें पाँव एकायक तान दिये जाते हैं, या जल्दी अवश्य की जाती है (क्योंकि यह आसन ही ऐसा है। पर झटका देकर कभी पाँवों को न उठाना चाहिये।

कमज़ोर फेफड़े या कमज़ोर दिल वाले, या जिनको दिल की धड़कन (पैलपिटेशन) की बीमारी हो या जिनकी धुकधुकी

निषेध

चलती हो उन्हें शलभासन न करना चाहिये। पूरक और फिर कुंभक प्राणायाम की अवस्था में यह व्यायाम होता है, इसलिये तगड़े लोगों के लिये भी शुरू में एक महीने तक एक या दो बार ही यह आसन करना चाहिये। फिर जब अपने ऊपर भरोसा हो जाय (छाती में बल अपने आप जान पड़ेगा) तब क्रमशः (४-६ महीने में) सात बार तक ले जाना चाहिये।

गहरी साँस लेने के कारण शलभासन एक प्रकार से प्राणायाम मिश्रित आसन है और इस से दिल और फेफड़ों का

व्यायामात्मक लाभ

पूरा व्यायाम हो जाता है जिससे छाती चौड़ी होती है और साथ ही रीढ़ के निचले हिस्से में लोच आता है। पेट की अँतड़ियों पर भी इस आसन का गहरा प्रभाव पड़ता है।

भुजंगासन के प्रयोग शलभासन पर भी लागू हैं। मुख्यतः अंजीर्ण

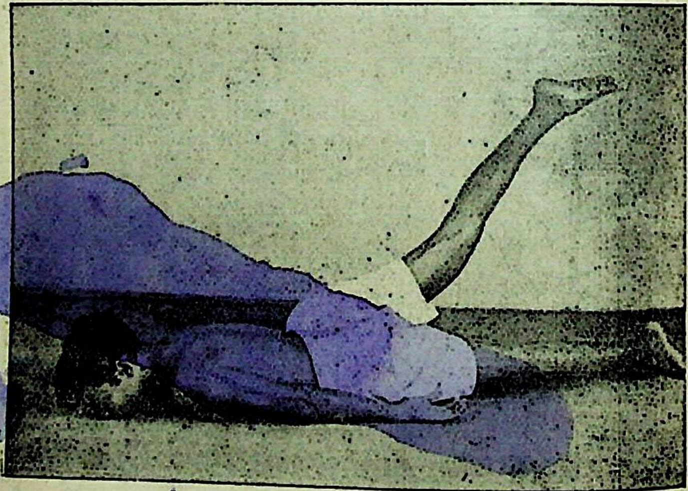
चिकित्सात्मक प्रयोग

और कब्ज को दूर करने में यह अक्सीर का काम करता है। फेफड़ों की शिकायतें दूर करने के लिये यह ख़ास आसन है।

अर्ध-शलभासन

नाम

इसको 'अर्ध' या 'आधा' शलभासन इस लिये कहते हैं कि इस में दोनों टाँगें न तान कर सिर्फ़ एक टाँग बारी-बारी से तानी जाती है। इसमें तनाव तथा व्यायाम भी प्रायः पूर्ण शलभासन का आधा होता है इससे इसका यह नाम पड़ा। यह ख़ास कर उन लोगों के लिये है जिनके लिये पूर्ण शलभासन काफ़ी कठिन जान पड़ता है।



चित्र नं० ३२

विधि — इसकी विधि में सब बातें पहले कही हुई पूर्ण शलभासन की सी ही हैं, सिर्फ थोड़ा सा अंतर है। (चित्र देखिये)।

पेट के बल लेट कर साँस को मामूली तौर पर चलती रहने दीजिये और शरीर को ढीला रखिये। शुरू में साँस रोकने या शरीर को सख़्त करने की ज़रूरत नहीं है। बस बारी-बारी से एक एक पाँव जहाँ तक ऊपर तान सकें तानते जाइये और फिर (१-२ सेकेंड रोककर) उठा हुआ पाँव नीचे लाइये और दूसरा ऊपर ले जाइये।

वही क्रम जारी रखिये जब तक जी भर कसरत न हो जाय।

दो एक महीने में जब काफ़ी बल मालूम होने लगे तब उठा हुआ पाँव साँस रोक कर ताने रहिये और शरीर भी कड़ा रखिये और फिर क्रमशः पूर्ण शलभासन आरंभ कर दीजिये।

विशेष — जिनको अर्धशलभासन ज़्यादा सध जाता है वह इसी में पूर्ण शलभासन से ज्यादा व्यायाम प्राप्त कर सकते हैं।

लाभ — अर्ध शलभाशन के लाभ आदि वही हैं जो पूर्ण शलभासन के, पर चूँकि शुरू में उतना व्यायाम नहीं होता इस से उतने गुण की आशा भी नहीं की जा सकती। पर क्या पूर्ण, क्या अर्ध, दोनों से निम्नलिखित बातें अवश्य होती हैं—

१. फेफड़े के हर एक सेल (वायुकोष) सक्रिय हो कर सजीव हो उठते हैं।
२. फेफड़े के तंतु (टीशू) लचीले हो जाते हैं।
३. यह 'कार्डियाक' नाम की पेशियों को बढ़ाती तथा दृढ़ करती है।
४. महाप्राचीरा का पूरा व्यायाम इस से होता है।
५. नीचे तथा ऊपर के पेट की पूरी कसरत इस से हो जाती है।
६. रीढ़ को ताज़गी आराम तथा कसरत तीनों बातें बारी-बारी से मिलती हैं।

धनुषासन

इस आसन में मनुष्य की आकृति खिंचे हुये धनुष की सी हो जाती है इस से इस को 'धनुष' आसन कहते हैं। हाथ और घुटने से

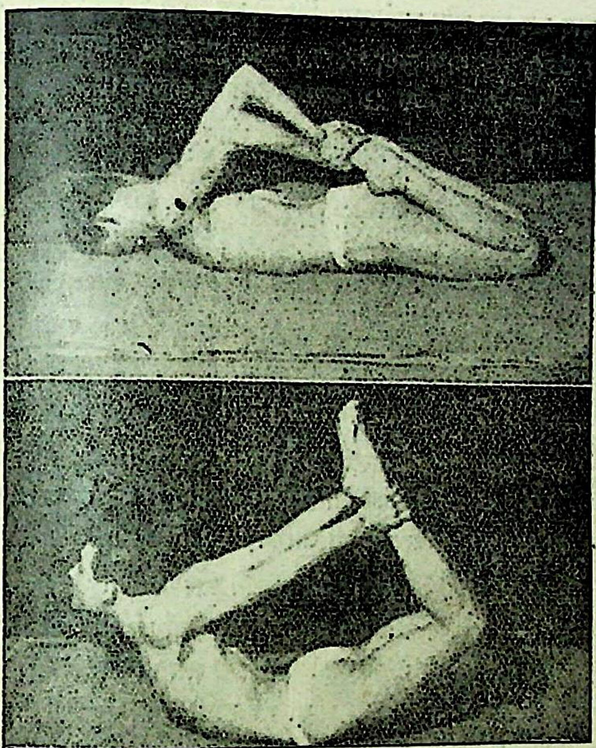
नाम — लेकर पाँव तनी हुई प्रत्यंचा (डोरी) का काम तथा रान और धड़ धनुष का काम करते हैं।

इस आसन को हम एक प्रकार से भुजंग और शलभ दोनों के बीच की कड़ी कह सकते हैं। भुजंग में पेड़ू से ऊपर का धड़ उठता है और नीचे का ज़मीन से लगा रहता है। शलभ में नीचे का ही भाग उठता है, ऊपर का ज़मीन से कसकर चिपका रहता है। पर धनुष में ऊपर नीचे के दोनों भाग उठ जाते हैं, सिर्फ शरीर का मध्य भाग (नाभि से पेड़ू तक) ज़मीन से लगा रहता है।

इस में भी शलभ की भाँति अंग जल्दी से तान दिये जाते हैं। पर

विधि — इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि किसी अंग या जोड़ पर झटका या टेढ़ा मेढ़ा तनाव न पड़े।

पहले पेट के बल शलभ की ही विधि से लेट जाइये। फिर दोनों पैरों को घुटने से ऊपर की ओर मोड़ कर दाएँ बाएँ पैरों को क्रमशः दाएँ बाएँ हाथों से थाम लीजिये (चित्र देखिये), हाथ के टखनों को दृढ़ता से पकड़ लीजिये। अभी तक दोनों पाँव रान पर मुड़े हुये हैं और दोनों घुटने सटे हैं। यहाँ से धनुष-आसन की विशेष क्रिया शुरू होगी। धीरे-धीरे छाती को निकालते हुये सिर को ऊपर उठाइये साथ ही फेफड़ों में हवा भी भरते जाइये (पूरक), जब पूरी साँस भर लें तब हाथों को ऊपर उठाते हुये पैरों को तान दीजिये जहाँ तक ऊपर तान सकें। धड़ और घुटने साथ ही उठें और बराबर की ऊंचाई में ही जाकर स्थिर हों। भरसक ऊपर पहुँचने तक दोनों घुटने मिले रहें तो अच्छा और ऊपर पहुँचने पर शरीर का संतु-



चित्र नं० ३३

लन वैलंस न बिगड़ने पावे। शुरू में अक्सर धड़ दाएँ या बाएँ लुढ़क जाने पर होगा या बेलन की तरह डगमगाने लगेगा। इस प्रवृत्ति को शांत अभ्यास के द्वारा रोकना होगा। बस यही इस की पूर्णावस्था है।

शुरू में यदि पूर्णावस्था की स्थिति में दम रोकने में तकलीफ़ हो तो मामूली तौर की ही साँस आने जाने दीजिये। पर कुछ दिन के अभ्यास

के बाद जब तक आप पूर्णावस्था में रहेंगे दम अपने आप ही रुका रहेगा और कुंभक प्राणायाम होता चलेगा। धड़ धनुषाकार जितना ही ऊँचे उठ सकें उतनी ही पूर्णता इस आसन की मानी जायगी।

आरंभ में पूर्णावस्था में पाँच सेकेंड रहना काफ़ी होगा और फिर क्रमशः बढ़ाते-बढ़ाते ३-४ मिनट तक ले जा सकते हैं।

प्रारम्भिक साधक को घुटनों को मिलाये हुये ऊपर तान में काफ़ी कठिनाई जान पड़ेगी, और उठाया ही न जा सकेगा। इस लिये शुरू के कुछ हफ़्तों तक घुटनों को थोड़ा फैले हुये ही (६ इंच के फासले पर) रखना अच्छा। फिर ज्यों ज्यों आसन सधता चले घुटनों का फासला कम करते चलिये, और आसन सिद्ध हुआ तब समझिये जब कि दोनों घुटनों को सटा कर पूरी ऊँचाई तक तन जायं।

इस आसन को एक बार में ३-४ बार से ज़्यादा न करना चाहिये।

निषेध

शेष निषेध जो भुजंगासन आदि में कहे हैं वही इसके सम्बन्ध में भी जानिये।

हम कह चुके हैं कि धनुष आसन भुजंग और शलभ दोनों के बीच की कड़ी है। इस को हम दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण

व्यायामात्मक लाभ भी कह सकते हैं। इस से ज़रा छोटे पैमाने पर दोनों के लाभ की आशा भी रक्खी जा सकती है। छोटे पैमाने पर इस लिये कहते हैं कि भुजंग का इतना गहरा रीढ़ का व्यायाम (रीढ़ के प्रत्येक जोड़ का) और शलभ के इतना फेफड़ों तथा हृदय के प्रत्येक वायुकोष का व्यायाम तो धनुष से नहीं होता पर तो भी बहुत कुछ दोनों का काम इससे हो जाता है। धनुष में शरीर का सारा बोझ बोझ निचले पेट और पेड़ू पर पड़ता है और साथ ही दोनों हाथ और पैर में एक तरह की रस्साकसी सी शुरू हो जाती है। भुजंगासन में बारी-बारी से जो एक एक रीढ़ की हड्डी का व्यायाम तथा शिथिलीकरण साथ-साथ होता चलता है, वह धनुष में असंभव है। पर इस में एक ऐसी

बात होती है जो दोनों से (शलभ तथा भुजंग) नहीं हो सकती। पेट की दोनों नालियों (जिनको नौली क्रिया के संग घुमाया जाता है मथानी की तरह, नौली का चित्र देखिये) और साथ ही पेड़ू की समस्त पेशियों का इतना गहरा तनाव तथा इतना सुन्दर व्यायाम और किसी आसन में नहीं होता।

चिकित्सात्मक प्रयोग इस के लगभग वही हैं जो भुजंग और शलभ के। पाचन शक्ति को बढ़ाने के लिये यह श्रेष्ठ आसन है।

पश्चिमोत्तानासन

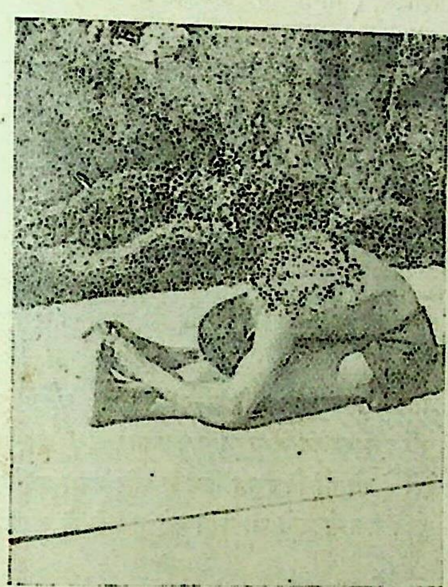
कुछ विद्वानों की इच्छानुसार इसको पश्चिम 'तान' और कुछ के अनुसार पश्चिम 'उत्तान' आसन कहते हैं। संस्कृत की

नाम

'तन्' धातु 'तानने' या 'खींचने' के अर्थ में होती है और इस प्रकार 'पश्चिमतान' शब्द के मानी हुये आगे के या सामने (पश्चिम की ओर) की ओर का तनाव। योगियों की भाषा में सामना या सम्मुखता पश्चिम की ओर होती है। इसका रहस्य यह है कि योगी सदा सूर्य की (पूर्व) की ओर पीठ करके अपनी आसन आदि क्रियाओं को करने बैठता है। सूर्य के सामने यानी पूरब की ओर मुंह करके आसन आदि करने का निषेध है योगिक नियमावली में। और वैज्ञानिक दृष्टि से तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से यही ठीक भी है जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे। तो इस रीति से 'पश्चिम' शब्द का अर्थ 'सामने' का यानी शरीर के 'मुख' की ओर' का हुआ। पूरे शब्द 'पश्चिमतान' का अर्थ हुआ मुंह की ओर की बनावट और इस दृष्टि से भुजंगासन को 'पूर्वतान' भी कहा जा सकता है क्योंकि उस में पीठ की ओर यानी पूर्व दिशा की ओर या उल्टा) तनाव होता है।

इस आसन के लिये जो शब्द हमने पसन्द किया है वह है (पश्चिम-उत्तान) 'पश्चिमोत्तान'। 'उत्तान' शब्द के अर्थ होते हैं 'उतान' यानी लंबा लेटा हुआ। पश्चिम की ओर लंबा लेट जाना होता है इस आसन में। 'पश्चिम'. यानी उल्टे, यानी मुंह के बल घुटने से मुड़कर लंबे हो जाना। यही इस आसन की क्रिया है। तान की जगह 'उत्तान' शब्द हमने इस लिये पसन्द किया कि 'तान' से केवल 'तनाव' का बोध होता है पर 'उतान' से ज़मीन की बराबरी पर पड़ जाने की ध्वनि निकलती है जो इस आसन के बहुत उपयुक्त है। क्योंकि जैसा कि हम अभी देखेंगे (चित्र देखिये) घुटनों के बीच से नाक के बिना ज़मीन की बराबरी पर

पहुँचे इस आसन की पूर्णता नहीं आती। और फिर आजकल लोग किस दिशा में मुंह या पीठ कर बैठना उचित है इस प्रश्न को कोई महत्व नहीं देते, (हालां कि देना चाहिये) इसलिये 'पश्चिमोत्तान' शब्द ही ज़्यादा उपयुक्त लगता है।



चित्र नं० ३४

आसन पर सीधे, दोनों टाँगें लंबी फैलाकर बैठ जाइये। ध्यान इस बात का रहे कि दोनों पाँव सीधे सामने फैले हों और

विधि

घुटने किसी भी हालत में पूर्णावस्था तक ज़रा भी मुड़ने या ऊपर की ओर उठने न पावें। नहीं तो 'तान' या तनाव पूरा न होगा।

बैठने के बाद दोनों हाथों की तर्जनी से दोनों पाँवों के अँगूठे पकड़ लीजिये। फिर जो कुछ साँस भीतर हो उसे बाहर निकाल कर और बाहर ही साँस रोके हुये (यानी मुड़ते समय भीतर साँस न आने दीजिये) अपने सिर को झुका कर (धीरे-धीरे) घुटनों के बीच तक ले जाइये। कुछ क्षण वहीं ठहरिये, (यानी जब तक आसानी से साँस बाहर रोक सकें तब तक) शुरू में ५-१० सेकेंड रुकना भी काफ़ी होगा। यही है इस आसन की पूर्णावस्था। अभ्यास काफ़ी हो जाने पर भी १½ या ज़्यादा से ज़्यादा २ मिनट तक रुका जा सकता है।

बहुत लोगों को ख़ासकर जो ज़्यादा मोटे या बढ़ी हुई तोंदवालों या मेद वृद्धिवालों या यों भी जिनकी उमर ज़्यादा हो गई है या दुबले पतले होने पर भी जिनकी रीढ़ जकड़े हुई है, उनको इस आसन में बड़ी कठिनता मालूम होती है। पर यह आसन है ही इसी कठिनता को दूर करने के लिये। क्योंकि मुटापा या मेद-वृद्धि की यह ख़ास दवा है जैसा कि हम आगे देखेंगे।

साथ ही जो दूसरी कसरतें करके अपनी रीढ़ को बहुत सख़्त बना चुके हैं उन को भी इस आसन में बहुत कष्ट होता है। हमने बहुत से ऐसे लोग भी देखें हैं जो यों बिलकुल फ़िट हैं और उमर भी ज़्यादा नहीं है पर मुँह को घुटने तक ले जाने की कौन कहे तर्जनी से अँगूठा तक नहीं छू सकते।

ऐसे लोगों को बहुत धीरे-धीरे और सतर्कता के साथ आगे बढ़ना चाहिये। यानी आसानी से जितना झुक सकें उतना ही झुकें, ज़्यादा ज़ोर शुरू में न लगावें पर दिन में ३-४ बार (भोजनों के ३ घंटे पहले या पीछे) इसकी कोशिश किया करें। धीरे-धीरे ज़ोर आता जायगा। पर कहीं से अगर झटका या ज़रूरत से ज़्यादा तनाव दिया तो हानि हो सकती है। शुरू में अगर अँगूठा तक छू लिया तो उतने ही से संतोष कीजिये। दिन पर दिन लोच बढ़ती जायगी, हलकापन आता चलेगा,

और चर्बी (मेद या मुटापा,) अगर मुटापे की वजह से नहीं कर पा रहे हैं तो घटती चलेगी।

खूब अभ्यास हो जाने पर यह आसन एक एक मिनट से शुरू कर के तीन बार में तीन मिनट तक किया जा सकता है।

पर जो लोग बहुत थोड़ा समय दे सकते हैं वह पाँच सेकेंड से ज़्यादा एक बार में न रुकें।

अगर पहले दफ़े में पूरा लोच न आवे तो दूसरी दफ़े में अगर पूरा नहीं तो पहले से काफ़ी ज़्यादा ज़रूर आवेगा, और जो लोग केवल व्यायामात्मक दृष्टि से इस आसन को करना चाहते हैं उनके लिये एक ही दफ़ा में ज़्यादा रुकने की बजाय, थोड़ा-थोड़ा रुकते हुये कई दफ़े यह आसन करना (पर तीन बार से ज़्यादा नहीं) ठीक होगा।

व्यायामात्मक लाभ

पश्चिमोत्तान सामने के तनाव का श्रेष्ठ व्यायाम है और पीठ तथा पेट दोनों की मांस पेशियों का हद दर्ज़े का तनाव इस से एक साथ पड़ता है और ऐसा तनाव किसी दूसरे आसन से नहीं पड़ता। इसका फल यह होता है कि पीठ, रीढ़ और पेट तथा पेड़ू की सारी नसों को पर्याप्त मात्रा में रक्त-संचार मिल जाता है जिस से सारे शरीर के स्वास्थ्य में उन्नति होती है।

इसका एक आध्यात्मिक महत्व है जो उपेक्षणीय नहीं है। योगियों की धारणा है कि 'अनहत नाद' का श्रवण-गोचर होना इसी आसन के साधन द्वारा संभव है। जो साधक आध्यात्मिक दृष्टि से एक ही बार में देर तक घुटने के नीचे (बीच में) कानों को सटाये रहते हैं उनको नैसर्गिक संगीत की ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। पर कम से कम एक घंटे तक इस आसन में रहना होगा और तब अनहत नाद सुनाई पड़ेगा और साथ ही कुंडलनी जागृत होकर साधक अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल होगा। आध्यात्मिक साधक के लिये साँस को बाहर रोक रखने वाली क़ैद नहीं है। क्योंकि साँस पर उसे इतना काबू हुआ रहता है कि पूर्णा-

वस्था में घंटा-घंटा भर रहते हुये भी वह प्राण (वायु) को इच्छानुसार नियंत्रित कर सकता है।

चिकित्सात्मक प्रयोग मोटापा, भद्दापन आदि दूर करने की सर्वश्रेष्ठ दवा है पश्चिमोत्तान आसन।

साथ ही कब्ज़ियत की भी यह दवा है बशर्ते कि तीन बार या तीन मिनट से ज़्यादा यह न किया जाय। क्योंकि ज़्यादा करने से कब्ज़ियत बढ़ने का भी ख़तरा रहता है। जिन लोगों को जीर्ण कोष्ठबद्धता है उन्हें पश्चिमोत्तान कम करना चाहिये।

पर भोजन के परिपाक के लिये पश्चिमोत्तान निश्चय ही विशेष लाभकारी है।

अर्धमत्स्येन्द्रासन

नाम

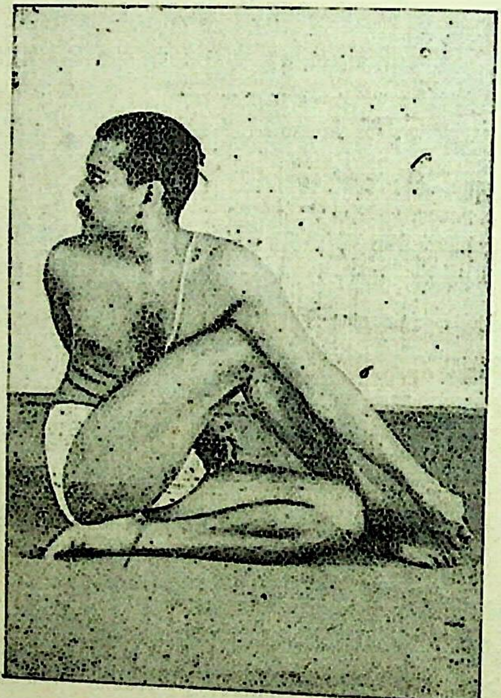
मत्स्येन्द्रनाथ नामक प्राचीन काल (१४वीं शताब्दी) में एक पहुँचे हुए हठयोगी हो गये हैं। गोरख-सम्प्रदाय नामक योगियों के एक मात्र प्रसिद्ध संप्रदाय के अधिष्ठाता विख्यात योगी गोरखनाथ के गुरू यही मत्स्येन्द्र नाथ ही कहे जाते हैं। अर्धमत्स्येंद्र आसन योगिराज मत्स्येन्द्र स्वामी ने ही आदि में आविष्कार किया था। कुछ लोगों का ऐसा भी मत है कि मत्स्येंद्रनाथ अधिकतर इसी आसन में बैठे रहा करते थे।

जो हो, उनके द्वारा आविष्कृत आसन का यह केवल आधा है, इसलिये इसको 'अर्ध' मत्स्येन्द्र कहते हैं। पूर्ण मत्स्येन्द्र अत्यंत कठिन है, इस को कर सकते थे। आज कल यह लुप्तप्राय हो गया है। यह बहुत उच्चकोटि का, मुख्यतः आध्यात्मिक आसन है, पर हमको मुख्यतः व्यायामात्मक आसनों को देना है अतः अर्ध मत्स्येन्द्र की क्रिया नीचे लिखी जाती है।

विधि

पहले आसन पर दोनों पाँव फैला कर बैठ जाइये इस प्रकार मानों किसी ध्यानात्मक आसन के लिये तैयार हो रहे हों। फिर बाएँ पैर को मोड़िये और उसकी एँड़ी को गुदा के नीचे या उस से सटा कर रखिये। फिर दाहिने पैर को गिरे हुये पैर के ऊपर से उठाते हुये, उसके घुटने के पास, ज़मीन से सटा कर रखिये। अब बाएँ हाथ को खड़े पैर के घुटने से छुआते हुये दाहिने पैर के अँगूठे को पकड़ लीजिये। फिर दाहिने हाथ को पीठ के पीछे से ले जाकर इसी तरफ़ सिर और गर्दन जितना मोड़ सकिये मोड़िये, कोशिश यह रहे कि ठुड्डी कंधे को छू ले। यही इसकी पूर्णावस्था है। फिर अदल-बदल कर दाहना पाँव मोड़िये और बायाँ उठाइये और दूसरी तरफ़ सिर और गर्दन उसी प्रकार मोड़िये।

इस आसन की मुख्य क्रिया रीढ़ के, क्रम से, दाहिनी ओर बाँई ओर के मरोड़ में है। हल, शलभ और पश्चिमोत्तान आदि से रीढ़ केवल आगे या पीछे को ओर मुड़ती है। रीढ़ को दाएँ, बाएँ मोड़ने के लिये एकमात्र यही आसन है।



चित्र नं० ३५

आरंभ में एक बार में ४-५ सेकेंड पूर्णावस्था में रुकना काफ़ी होगा। व्यायाम की दृष्टि से पूर्ण समय १ मिनट तक बढ़ा सकते हैं। पर क्रमशः

अभ्यास बढ़ाते-बढ़ाते आवश्यकता या शक्ति के अनुसार ५-६ वार तक कर सकते हैं।

पूर्ण आरोग्य और यौवन को स्थायी बनाने के लिये रीढ़ को सब ओर से लचीली बनाना आवश्यक है। यह आसन रीढ़ को

व्यायामात्मक लाभ सब ओर से, मुख्यतः दोनों बग़ल से लोचदार बनाता है। मेरुदंड को पूर्ण रक्त संचार इससे प्राप्त होता है। पश्चिमोत्तान आसन के बाद इसे करने से दोनों का पूरा लाभ होता है।

चिकित्सात्मक प्रयोग कोष्ठबद्धता तथा अजीर्ण के लिये यह आसन हितकर है। बढ़ी हुई तिल्ली, यकृत और गुर्दे के लिये भी यह लाभप्रद है।

कमर, पीठ, और जोड़ों के दर्द में यह अक्सीर का काम करता है।

वज्रासन

इसको 'वज्र आसन' इसलिये कहते हैं कि यौगिक भाषा में 'वज्र' कहते हैं शिश्न को। इस आसन द्वारा जननेन्द्रिय तथा

नाम

उसके आस पास के प्रान्त को पूरा रक्त संचार मिलता है इसलिये इसका यह नाम पड़ा। पर उक्त भागों का पूर्ण व्यायाम सुप्त वज्रासन में होता है। जिसकी क्रिया इसके बाद लिखी जायगी।

वास्तव में साधारण वज्रासन एक ध्यानात्मक आसन ही अधिक है व्यायामात्मक की अपेक्षा। कुछ योगियों के अनुसार 'वज्रासन' उसको कहते हैं जिसे हमने 'सिद्धासन' कहा है। और इस आसन को वज्र आसन कहना असंगत नहीं है क्योंकि उसमें जननेन्द्रिय को वश में करने का प्रयत्न किया जाता है।

सामने की ओर पैर फैला कर आसन पर सीधे बैठ जाइये। फिर बायाँ पैर घुटने के पास से मोड़ कर रान के पास ले

विधि

आइये। ऐसा करते समय पैर उठ जायगा ही। फिर बाएँ हाथ से ही बायाँ पैर थाँभ कर बाएँ नितंब के नीचे ले जाकर मोड़ कर (यानी तलवा नितंब को छूता हुआ रहे) स्थापित कर दीजिये। घुटना ज़मीन पर आ जायगा। एँड़ी शरीर से सटी रहेगी (मानो कूल्हे को सहारा दिये हुये हो) और पैर का पंजा नीचे ज़मीन को छुए रहेगा। बायाँ पंजा ज़रा तिरछा रक्खा जायगा कि दाहिने पंजे की ओर झुका हुआ सा रहे।

ठीक इसी तरह दूसरा पाँव भी घुटने से मोड़ कर नितम्ब के नीचे स्थापित कीजिये। नितंब पुरा और गुदा ज़मीन पर रहे और दोनों पाँव बग़ल में रहें।

एक दूसरा प्रकार भी है पाँवों के रखने का, जिसके अनुसार गुदा के ठीक नीचे दोनों पाँव रक्खे जाते हैं।

दोनों ओर के मोड़ के लिये कुल तीन मिनट का समय काफ़ी होगा। इतने समय में ८-१० बार यह आसन कर सकते हैं। पर शुरू में १ मिनट ही पर्याप्त है और इतने में दो दो मोड़ दोनों ओर के किये जा सकते हैं।

इसके लाभ अर्धमत्स्येन्द्र के ही समान हो सकते हैं पर छोटे पैमाने पर। ज़ोर लगा कर रीढ़ को काफ़ी मोड़ा जा सकता है इससे भी मेरुदंड को पूरा व्यायाम मिल सकता है।

लाभ

वक्रासन

नाम

यह अर्धमत्स्येन्द्र का संक्षिप्त या सरल रूप है। जो लोग अर्धमत्स्येन्द्र मुटापा या रीढ़ की सख्ती या कमज़ोरी की वजह से नहीं कर सकते उनके लिये यह है। इस का नाम 'वक्र' आसन इस लिये रक्खा गया है कि रीढ़ को वक्राकार या टेढ़ा मोड़ना ही इस की मुख्य क्रिया है। संस्कृत में वक्र 'टेढ़ा' को कहते हैं।

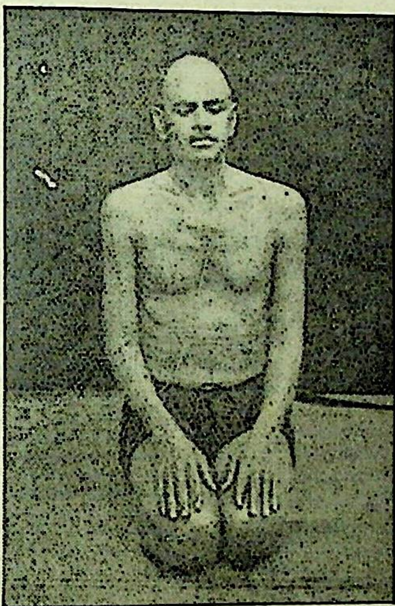
विधि

इस की विधि में अर्धमत्स्येन्द्र की विधि से थोड़ा सा ही अंतर है।

पहले दोनों पाँव सीधे लंबे फैला कर बैठ जाइये, फिर दाहिना पाँव उठाकर घुटने से मोड़ कर फैले हुए बाएँ पाँव के घुटने के नीचे बगल में थोड़ा खोंस लीजिये। फिर धड़ को ज़्यादा मोड़े बिना ही दाहिना हाथ पीठ के पीछे स्थापित कर दीजिये, हथेली ज़मीन से छुई रहे। इसके बाईं भुजा से बाहर से दाहिने घुटने को लाँघ कर इस पार लाकर उसकी हथेली ज़मीन पर रखिये। ऐसा करने समय दाहिने घुटने को बाईं ओर जहाँ तक मोड़ सकिये मोड़िये, और साथ ही धड़ को जहाँ तक बाईं ओर घुमा सकिये घुमाते जाइये। ऐसा करते समय घुटने और दोनों हथेलियाँ अपने-अपने स्थान पर दृढ़तापूर्वक जमी रहें जिससे मोड़ या वक्रता पूरी हो सके। धड़ को मोड़ने के साथ गर्दन भी मोड़ते जाइये यहाँ तक की ठुड्डी दाहिने कंधे को छूने लगे। ठुड्डी कंधे तक पहुँचने के साथ ही इस आसन की पूर्णावस्था आती है।

एक मोड़ दाहिनी ओर का होने के बाद आसन बदल कर बाईं ओर को धड़ मोड़िये। सारी क्रिया पूर्ववत् होगी केवल हाथ भर दाहिने की जगह बाँएँ और बाएँ की जगह दाहिने हो जायँगे।

पाँवों को ठीक स्थापित कर लेने के बाद दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रखिये इस आसन की पूर्णावस्था क़रीब-क़रीब ठीक वैसी ही है, जैसी बैठ कर नमाज़ पढ़ने के वक़्त होती है। ध्यान और मानसिक शान्ति के लिये निश्चय ही यह एक सुन्दर आसन है (चित्र देखिये)।



चित्र नं० ३६

निषेध जिन लोगों के घुटने सख़्त हों या वात के कारण जोड़ों में दर्द हो उन्हें वज्रासन बचा जाना चाहिये।

लाभ भोजन के बाद कुछ देर इस आसन पर से किया हुआ आहार उचित रीति से शरीर के सब भागों में पैवस्त हो जाता है और पाचन क्रिया ठीक होती है।

पादहस्त आसन के बाद वज्र-आसन और सुप्तवज्रासन करने से पूरा लाभ होता है।

सुप्तवज्रासन

नाम

'सुप्त' शब्द के अर्थ होते हैं सोया या लेटा हुआ। पिछले अध्याय में कहे हुए वज्रासन की पूर्णावस्था करके पीठ के बल लेट जाने पर सुप्त वज्रासन हो जाता है। पहुँचे हुये हठयोगियों की पूर्ण निद्रा इसी आसन में होती थी ऐसा कहा जाता है। कम से कम २-३ घंटे की नींद आना भी इस आसन को मारे हुये संभव है कि नहीं यह कहना कठिन है पर यह निश्चय है कि वज्रासन और सुप्त वज्रासन दोनों ही मानसिक शान्ति के लिये अनुपम हैं। पर सुप्त वज्रासन में तो व्यायाम भी काफी होता है। कम से कम शुरू में घुटनों, पेड़ू और पीठ का। और जब आसन इतना मँज जाय की तनाव बिलकुल न मालूम पड़े तो संभव हैं कि साधक इस आसन में सो भी जाय।

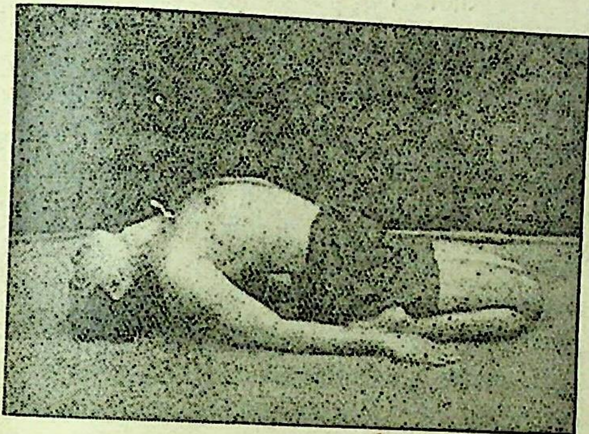
विधि

वज्रासन लगा लेने के बाद पूर्व कथित मत्स्यासन की विधि से लेट जाने पर सुप्त वज्रासन हो जाता है। फर्क इतना ही है कि मत्स्यासन होता है पद्मासन में लेटने पर और यह होता है वज्रासन लगाकर लेटने पर। इसको भी हम वज्रासन का एक 'विकास' कहना ही अधिक उपयुक्त समझेंगे जैसे कि शीर्षासन के कई विकास कहे गये हैं।

पर एक दम से पीठ के बल पड़ जाना ठीक नहीं। बारी-बारी से थोड़ा-थोड़ा हाथों की कुहनियों के सहारे झुकते हुये लेटिये। पहले एक हाथ पीठ के पीछे ले जाइये फिर उसको हटा कर दूसरा. इस प्रकार धीरे-धीरे पूरा लेटिये। पूरा लेटने पर दोनों हाथ हटा लीजिये और कंधा जमीन से लगा लीजिये।

इतना होने के बाद सिर थोड़ा ऊंचे उठा कर हाथों को कुहनियों से मोड़ कर गर्दन के नीचे कंधे के जोड़ को थाम लीजिये। आँखें मूंद लीजिये

और पूर्ण शान्ति का अनुभव कीजिये। ये दोनों हाथ तकिया का सा काम करेंगे और आँखें बंद कर लेने पर सचमुच सोने की या 'सुप्त' मुद्रा बन जायगी।



चित्र नं० ३७

कुछ योगी हाथों का तकिया न बनाकर मत्स्यासन की भाँति हाथों से पाँव थामे हुये रहना पसंद करते हैं। वज्रासन के दोनों प्रकार में सुप्त वज्रासन लग सकता है। इस आसन को खोलते समय काफ़ी सावधानी रखनी पड़ती है। पहले हाथों को खोल कर धड़ को धीरे-धीरे उठा कर मामूली वज्रासन की स्थिति में आ जाइये। फिर अंत में हाथों के सहारे पाँवों को धीरे-धीरे खींच कर सीधा कीजिये।

जल्दी करने से घुटनों में चोट आ सकती है। इस आसन में तीन मिनट से अधिक समय न देना चाहिये और सो भी पूरा अभ्यास हो जाने के बाद।

पश्चिमोत्तान और पादहस्त के बाद यह आसन करने से मेरुदंड और पीठ, रीढ़ कमर तथा पेड़ू की पूरी कसरत, मालिश व्यायामात्मक लाभ और आराम (शिथिलीकरण) ये तीनों क्रियायें हो जाती हैं।

जिनका कूबड़ निकला हो या कमर झुकी हुई हो उनके लिये यह चिकित्सात्मक आसन हितकर है।

प्रयोग

प्राचीन योगियों के अनुसार वज्रासन, तथा सुप्त वज्रासन द्वारा पुरुष-जननेन्द्रिय सम्बन्धी स्थानीय शिकायतें (लघुत्व, कृशता, दुर्बलता आदि) दूर होकर कुलिशवत कठोरता प्राप्त की जा सकती है।

सिंहासन

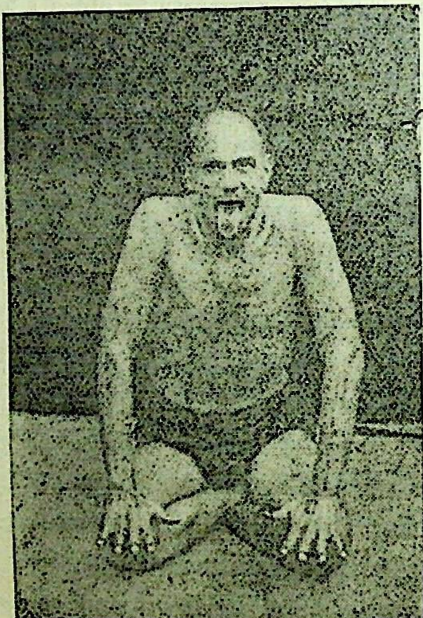
नाम — इसको 'सिंह' आसन इसलिये कहते हैं कि इस में बैठ कर साधक की आकृति तथा मुद्रा सिंह के समान बन जाती है। सिंह जब, अपने जवड़े फैला, जीभ निकाल कर अपने शिकार पर हमला करने को होता है, उस समय की मुद्रा बनती है सिंहासन में।

विधि — पहले दोनों पाँव फैलाकर बैठ जाइये। फिर दाहिना पाँव घुटने से मोड़ कर बाँईं रान के नीचे ले जाकर इस प्रकार ले जाकर रख दीजिये कि दाहिनी एँड़ी पर बायाँ नितंब (चूतड़) आ जाय और आप आराम से दाहिनी एँड़ी पर बैठ सके। और इसके बाद दाहिना तलवा उलट कर रखना पड़ेगा। इस के बाद अपने शरीर का पूरा बोझा दाहिनी एँड़ी पर रख कर दाहिना नितंब थोड़ा उठाया जायगा और इस स्थिति से उल्टा हुआ दाहिना तलवा थोड़ा सा बाहर से दिखलाई पड़ता रहे और अँगूठा कुछ-कुछ रान के उस पार निकला हुआ सा रहे। इस के बाद जब आप दाहिनी एँड़ी पर आराम से आसन जमा चुकें तब बाएँ पाँव को घुटने से मोड़ कर दाहिनी रान और दाहिनी पिंडुली के बीच में से घुसेड़ते हुये उसी प्रकार दाहिने नितंब के नीचे जमा दीजिये जिस से बाईं एँड़ी पर भी पहले की तरह पूरा भार देकर आप बैठ सकें। बायाँ तलवा भी उसी प्रकार उल्टा हुआ और उसकी उँगलियाँ दाहिनी रान के उस पार फैली हुईं दिखेंगी। दोनों एँड़ियाँ अपनी जगह पर ठीक जमा कर, दोनों पर बराबर भार देकर समभाव से बैठिये।

घुटने ज़मीन पर टिके हुये और नितंब कुछ उठे से रहेंगे और शरीर का पूरा भार रानों पर अब आ जायगा और कुछ सामने की ओर साधक झुका सा रहेगा ठीक जैसे शेर शिकार पर लपकने के समय होता है।

पर वास्तविक लक्ष्य यह है कि आप भरपूर आसन जमा कर बैठें, कहीं से डावाँडोल न हों।

इसके बाद हाथों को घुटनों पर रख हथेली फैला पर बाँह और सामने का हाथ ख़ूब कड़ा कर लीजिये, हर एक पेशी तन जायँ। हाथों और हथेलियों की स्थिति ऐसी हो जैसी की झपट्टा मारने की तैयारी के समय शेर के पंज़ों और पुट्ठों की होती है।



चित्र नं० ३८

कंधों से थोड़ा दवाव घुटनों पर डालते हुये सीना बाहर को उभाड़ दीजिये और रीढ़ बिलकुल सीधी रखिये जिससे कि पूरा धड़ सीधा रहे। यही है सिंहासन की पूर्णावस्था, पर इतना कर चुकने के बाद ही सिंहासन

की विशेष क्रिया शुरू होती हैं और इस क्रिया का सम्बन्ध है जिह्वा तथा नेत्रों की स्थिति से।

जबड़े पूरे फैला कर जीभ जितना बाहर निकाल सकें निकालिये और आँखें भ्रूमध्य दृष्टि के अनुसार बना लीजिये (कुछ योगियों के अनुसार नासाग्र दृष्टि भी लगा सकते हैं) और ठुड्डी को जालंधर बंध के अनुसार कंठमणि में गाड़ दीजिये। जालंधर बंध में भ्रूमध्य दृष्टि ही ठीक पड़ती है इससे हमने नेत्रों की यही स्थिति पसंद की है (चित्र नं० ३८ देखिये) इस आक्रमणोद्यत सिंह, या जिस समय वह किसी पशु को कवलस्थ करने को होता है, ठीक वैसी ही मुद्रा आप की होनी चाहिये। यही है पूर्णावस्था।

जब तक आप उक्त पूर्णावस्था में रहेंगे श्वास क्रिया मुख्यतः मुख से होगी। यही एक आसन ऐसा जिस की पूर्णावस्था में नथुनों से साँस न ली (या नाम मात्र, कभी कदाचित लेते हुये) जाकर मुख मार्ग से ली जाती है। शेर जिस तरह मुँह से हाँफता है शिकार हड़पने के समय, ठीक इसी की नक़ल करनी होती है।

इस आसन में ज़्यादा से ज़्यादा तीन मिनट का समय दे सकते हैं और सब के अंत में ही इसका करना ठीक होगा।

कोई-कोई साधक सिंहासन के साथ ही जिह्वा बंध का अभ्यास करते हैं (और यही ठीक भी है) इसलिये इस बंध की क्रिया भी यही बता देनी ठीक होगी। सिंहासन तथा विपरीत करणी के पूर्ण लाभ साथ-साथ जिह्वाबंध लगाने पर ही होते हैं—

जिह्वा बंध — जीभ को पहले सिंहासन की तरह बाहर खींचिये फिर सख़्त करते हुये उसकी नोक को उलट कर ऊपर के दोनों तालुओं (पहले कठोर फिर मृदु) की छत को चटाते हुए कौए के रंध्र पर लगा दीजिये।

जिनकी जीभ लंबी होती है उनको इसमें सुविधा होती है। जो

लोग खेचरी मुद्रा (जिसके सिद्ध होने पर साधक दीर्घायु होकर आकाश में विचर सकता है) का अभ्यास करना चाहते हैं वह जीभ के नीचे का संयोग तन्तु कटवा देते हैं और तब आसानी से जीभ टोटी में लग जाती है जहाँ पर अमृत टपकता है। 'खेचर' शब्द के अर्थ होते हैं 'गगनचर' या आकाश मार्ग में विचरने वाला। संस्कृत 'ख' शब्द के अर्थ आकाश के हैं। इस मुद्रा[1] को सिद्ध करने के पहले विपरीत करणी, सिंहासन और पूर्ण जिह्वा बंध सिद्ध कर लेने होते हैं।

यों अकेले सिंहासन का कोई विशेष व्यायामात्मक या आध्यात्मिक

व्यायामात्मक लाभ

महत्व नहीं है, उड्डीयान, मूल तथा जालंधर बंध का अभ्यास सिद्ध करने के लिये यह उत्तम आसन है। सिंहासन लगाये हुये क्रम से उक्त तीनों बंधों का अभ्यास करना बहुत सुविधाजनक होता है। और साथ ही जिह्वा बंध करते रहने से गले, जीभ, तथा कान और नाक की नसों का पूरा व्यायाम तथा मालिश हो जाती है।

वाधिर्य तथा 'टाँसिल' की बीमारी में जिह्वा बंध के साथ सिंहासन द्वारा विशेष लाभ होता है। वारम्वार (१०-१२ बार

चिकित्सात्मक प्रयोग

जीभ को बलात् बाहर निकालना और फिर नोक को घुमाकर (मुंह बन्द रखते हुये) मुलायम तालू के एक दम उस पार भिड़ा देने से ब्रह्मांड तथा गले की कई बीमारियाँ अच्छी हो सकती हैं जैसे—

(१) गर्दन की पेशियों की शिकायतें।

(२) कर्विकल नसें और गैंगलिया, फारिंग्स, लारिंग्स तथा थाइराइड (कंठमणि) आदि गिल्टियाँ जो मुख और गले के आस पास है, नवीन रक्त की प्राप्ति द्वारा निरोग और सबल हो उठती हैं।

---

१. खेचरी मुद्रा तथा कुछ अन्य मुद्राओं का विषय इस पुस्तक के अन्दर नहीं आता। इनके लिये हमारी प्राणायाम के सम्बन्ध की पुस्तक की प्रतीक्षा कीजिये।

(३) थूक (जिसका घनिष्ठ सम्बन्ध पाचन क्रिया से है) का व्यापार तथा कफ़ रोग दूर होते हैं।

(४) कान के पर्दे की मुटाई के कारण बाधिर्य, कर्ण तथा पीनस, आदि में इनसे बहुत लाभ देखा गया है।

मयूर-आसन

'मयूर' शब्द के अर्थ है मोर के। इस आसन की पूर्णावस्था में साधक

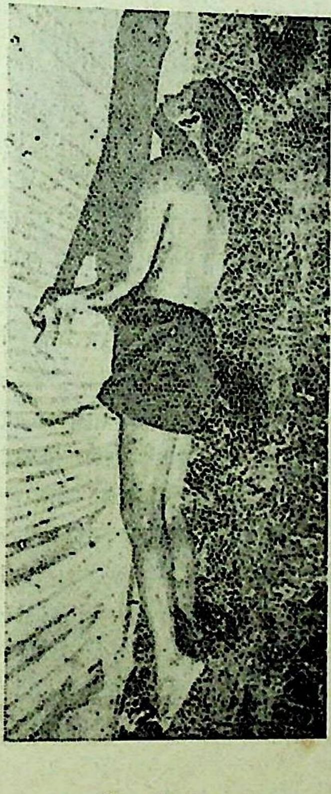
नाम — की आकृति बहुत कुछ पर फैलाये हुये नृत्य के लिये उद्यत जंगली मोर की सी हो जाती है इसी से इसका नाम 'मयूर' आसन है।

व्यायामात्मक विधि — दृष्टि से यह आसन संभवतः सब से कठिन है, इसे सब आसनों के कर चुकने के बाद अंत में करने की चेष्टा करनी चाहिये। अंत में हम इसलिये कहते हैं कि शुरू के सब आसन करते-करते सब नसें रक्त संचार से उत्फुल्ल और मुलायम हुई रहेंगी तो इसके करने में कुछ आसानी हो जायगी। और 'चेष्टा' हमने इसलिये कही है कि शुरू के कुछ हसों तो यह आसन अच्छे ख़ास तगड़े नौजवानों से भी न होगा। कमज़ोर लोगों को कभी-कभी छ-छ महीने लग जाते हैं।

आरंभ में घुटने के बल बैठ जाइये। दोनों हाथ कलाई से उलट कर मोड़ कर रख लीजिये कुहनियाँ मिली हुई और नाभि के ठीक नीचे रखिये। ये मिली हुई कुहनियाँ एक प्रकार की खूंटी का काम करेंगी जिन पर सारा शरीर टाँग दिया जायगा। हाथ के पंजे और अँगुलियाँ इस तरह उलट कर इसलिये रक्खी जाती हैं (चित्र देखिये) कि जिससे सारे शरीर के उठने पर बोझा भली भाँति सँभाल सकें। मोर के पंजे बहुत कुछ इसी तरह उल्टे हुये हाथ की अँगुलियाँ जैसे लगते हैं।

फिर सामने की ओर झुकते हुये (ठुड्डी और गर्दन सामने जितनी लंबी कर सकें करते हुये) दोनों पाँव पीछे फैला दीजिये और साथ ही ठुड्ढी ज़मीन की ओर झुकाते हुये दोनों पाँव ज़मीन से उठा दीजिये। उठने पर सारा शरीर एक सिधाई में ज़मीन के समानान्तर पर होना चाहिये यही इस की पूर्णावस्था है।

शुरू में साधक को पूर्णावस्था में दम रोके हुये रहना पड़ेगा क्योंकि इस में बहुत काफी ज़ोर लगाना पड़ता है। पर सध जाने पर उतना ज़ोर न लगाना पड़ेगा और तब मामूली तौर से साँस लेते और निकालते हुये पूर्णावस्था में रह सकते हैं।



चित्र नं० ३६

आरंभ में २-३ सेकेंड ही यदि पूर्णावस्था में रह सकेंगे तो बहुत है।

काफ़ी अभ्यास हो जाने पर भी १ मिनट की पूर्णावस्था से ज़्यादे की चेष्टा न करनी चाहिये।

जो योगी लोग आँतों को धोने के लिये वस्तिक्रिया (योगियों का 'एनीमा') करते हैं वे वस्ति के बाद मयूरासन करते हैं और वह दोनों पाँवों को काफी फैलाये हुये उठाते हैं। उद्देश्य यह है कि जो कुछ जल पेट में रुक गया हो वह गुदा मार्ग से बाहर निकल जाय।

वस्ति कर्म में साधक एक सरकंडे की टोटी से गुदा मार्ग द्वारा पानी पेट में चढ़ाता है और कुछ मिनट रखने के बाद इसे निकाल देता है। इस की शिक्षा व्यक्तिगत रूप से ही हो सकती है। वस्ति से पेट और आँतों की पूरी सफ़ाई हो जाती है। पर जो कुछ गंदा पानी पेट या आँतों में रुक गया हो तो उसे निकालने के लिये पाँव फैला कर मयूरासन करना सब से अच्छा साधन है। विना मयूरासन सिद्ध किये योगी लोग किसी को वस्ति-क्रिया कराते ही नहीं।

पर यों व्यायाम के लिये दोनों पाँव मिलाते हुये उठाने की चेष्टा करना उचित है।

मयूरासन से पेट और पेड़ू आमाशय तथा मलाशय का बारी-बारी से पूरा व्यायाम और शिथिलीकरण हो जाता है जिस व्यायामात्मक लाभ से पाचन यंत्र निर्दोष हो जाता है।

पाचन तथा क्षुधा वृद्धि के लिये मयूरासन से बढ़कर कोई आसन चिकित्सात्मक प्रयोग नहीं है।

शवासन

संस्कृत के 'शव' शब्द के अर्थ होते हैं मृतदेह या 'लाश' के। इस

नाम

आसन में साधक मुर्दे की तरह स्पंदन-शून्य और संज्ञा-शून्य सा होकर पड़ जाता है। सिद्ध योगी तो वास्तव में इसकी पूर्णावस्था काल तक के लिये सचमुच कर ही जाते थे। हृदय की गति उनकी स्थगित हो जाती थी।

यह शिथिलीकरण का आसन है। इसका एक मात्र उद्देश्य है सारे शरीर की प्रत्येक पेशी, नस तन्तु तथा संपूर्ण मस्तिष्क को पूरा आराम पहुँचाना। योगासनों की यही विशेषता है कि इनमें व्यायाम और शिथिलीकरण दोनों साथ-साथ चलते हैं। शवासन तो केवल शिथिली-करण के लिये ही है, पर भुजंग शलभ आदि अन्य आसनों की क्रियायें भी ऐसी हैं कि बारी-बारी से व्यायाम और शिथिलीकरण दोनों साथ-साथ चलते हैं।

शवासन की विधि सबसे सरल और साथ ही सब से कठिन भी है।

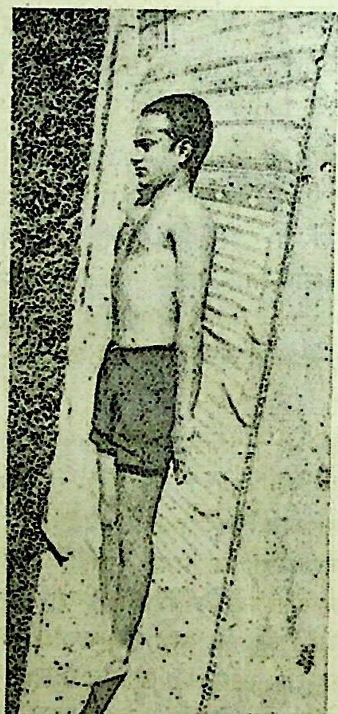
विधि

'कठिन' क्यों है यह हम आगे बतावेंगे। इसी की कठिनता का सम्बन्ध चित्तवृत्तियों के निरोध से है जो योग का प्रधान अंग है और जो सचमुच एक बड़ा कठिन व्यापार है। क्योंकि जिसने इच्छानुसार चित्तवृत्तियों का निरोध करना या दूसरे शब्दों में, मन को अपना हुक्मी बन्दा बनाकर मनमाना काम लेना सीख लिया वह सचमुच मामूली मनुष्यत्व के बहुत ऊँचे उठ गया और देवत्व या ईश्वरत्व के करीब पहुँच चला।

यों शवासन की विधि बहुत सरल है। सीधे (चित्र नं० ४० देखिये) चित लेट जाइये। नेत्र बंद, दोनों हाथ बगल में और दोनों पाँव जुड़े हुये रखिये। सारा शरीर एक दम ढीला छोड़ दीजिये और ऐसा सोचिये जैसे समूचे शरीर का हर एक अंग ढीला, बिलकुल ढीला हो गया है। हाथों की

हथेली चित या पट, जिस में आप ज़्यादा ढीलापन अनुभव कर सकें रखिये। और फिर सोचिये कि आप का हर एक अंग ढीला हो रहा है।

बारी-बारी से एक-एक अंग सोचते चलिये। जिस अंग की बात सोचियेगा वही ढीला हो जायगा। बाँयें पाँव के अँगूठे से शुरू कीजिये, फिर उंगलियों,



चित्र नं० ४०

तलवा, पंजा, पिंडुली, घुटना, रान, नितंब तक आइये। फिर इसीका दाहिना पाँव सोचिये। दोनों पाँव हो जाने पर सोचिये कि रीढ़ बीच में बिलकुल

ढीली और सीधी है। फिर बारी बारी से पीठ और पेट के सब अंग, फिर दिल और फेफड़ों को बिलकुल ढीला-ढीला सोचिये। फिर दोनों हाथ, ठीक दोनों पैरों की तरह लीजिये। अंत में कंठमणि, गर्दन और सिर के सारे अँगों (आँख, कान, नाक आदि) को एक-एक करके सोचिये।

'सारे अंग ढीले हो रहे हैं' ऐसा सोचने के साथ ही साथ यह भी सोचते जाइये कि सारे अँग 'निरोग और सबल हो रहे हैं।'

एक बार पैर से सिर फिर दूसरी बार सिर से पैर (उल्टी रीति से) सारे अंगों को सोचते जाइये।

यह हो जाने पर प्रायः ३-४ मिनट बिलकुल कुछ मत सोचिये, सिर्फ अपनी आती जाती हुई साँस को लक्ष्य करते जाइये।

मुख्य क्रिया मन आप का इधर उधर बहुत भागेगा। पर सब ओर से उसको बटोर कर अपनी श्वास क्रिया की ओर एकाग्र करना ही होगा। यही शवासन की मुख्य क्रिया है और यही सब से कठिन भी है। इसके साधन में महीनों या सालों लग सकते हैं।

योगी लोग इस साधना के तीन स्तर बताते हैं। पहले महीने में आप श्वास को नियंत्रित करने की बिलकुल कोशिश मत

प्रथम स्तर कीजिये सिर्फ देखते जाइये आप की मामूली साँसें कैसी चल रही हैं यानी (श्वास और प्रश्वास दोनों) बराबर हैं या घट बढ़ कर। आप को पता चलेगा कि दोनों में कुछ अंतर है। योगियों के अनुसार बहुत सी बीमारियाँ श्वास की इस घट बढ़ के कारण होती हैं। आमतौर से शिकायत यह होती है कि साँस लेने में ज़्यादा समय लगता है और निकालने में कम। पर होना चाहिये ठीक इसका उल्टा। पर शुरू में आप केवल लक्ष्य करते चलिये, घटाने बढ़ाने, या दोनों को बराबर करने की कोई कोशिश मत करिये। यदि चित्त आप का श्वास क्रिया पर एकाग्र है तो श्वास क्रिया, समय पर, अपने आप निर्दोष हो जायगी।

द्वितीय स्तर

फिर जब चित्त काफी देर तक (अंततः ५ मिनट) एकाग्र होने लगे तो आप दोनों (श्वास और प्रश्वास[1]) को बराबर करने की कोशिश करें; यानी दोनों में बराबर समय दें। इसका सब से अच्छा तरीक़ा योगियों के अनुसार, श्वास के समय 'ॐ' और प्रश्वास के समय 'सत्' का मानसिक जप करते रहना सर्वश्रेष्ठ उपाय है। यानी 'ॐ' में जितना समय लगे उतना ही 'सत्' (साँस बाहर फेंकते समय) में लगे ऐसी चेष्टा कीजिये। एक महीने के अभ्यास से 'ॐ' और 'सत्' दोनों बराबर हो जायँगे और श्वास क्रिया निर्दोष हो चलेगी। इस मानसिक जप का आध्यात्मिक महत्त्व बहुत बड़ा है और साधन करते चलने ही पर इसका फल जान पड़ेगा।

पर जिनको इस में ज़हमत मालूम हो वह मन ही मन १-२ की गिनती का ऐसा हिसाब रक्खें श्वास में जितनी गिनती (१, २, ३) गिनें उतनी ही प्रश्वास में। इस तरह से भी श्वास क्रिया बराबर (सम) की जा सकती है।

अंतिम स्वर

श्वास क्रिया जब विषम से सम हो जाय तो साधक को धीरे-धीरे अपनी साँसों को लंबी और गहरी बनाने की कोशिश करना चाहिये पर ऐसा करते समय ज़ोर देना हानिकर हो सकता है। चाल वैसी ही मंद और मधुर होगी सिर्फ़ श्वास और प्रश्वास दोनों ज़रा ज़्यादा समय ($\frac{१}{३}$ चरण) देने की कोशिश कीजिये यानी यदि ३ तक गिनते हैं तो ४ तक गिनिये, दोनों तरफ से; या यदि 'ॐ', 'सत्' का मानस जप करते हैं तो 'ॐ' और 'सत' दोनों को ज़रा दीर्घ (लंबा) कर दीजिये।

पर सब से ज़रूरी बात यह है कि ध्यान बराबर श्वास, प्रश्वास की गति पर ही केंद्रित रहे, ज़रा भी इधर उधर भटकने मत दीजिये। क्योंकि

---

[1]अन्दर खींची जाने वाली वायु को 'श्वास' और बाहर फेंकी जाने वाली को हम 'प्रश्वास' कहेंगे।

मन अगर बेलग़ाम रहा तो शवासन की क्रिया का पूरा लाभ न होगा।

पर मन को एकाग्र करने के लिये काफ़ी कोशिश और आत्मिक शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी, योग मार्ग में यह बाँछनीय नहीं है कि कोई कष्ट कर व्यापार हो। सब बातें आनन्ददायक होनी चाहिये। शुरू में कुछ दिन तकलीफ़ हो सकती है, मन बटोरने में पर कुछ हसों बाद उसी में आनंद भी आने लगेगा।

यह श्वास को लक्ष्य करते चलने का अभ्यास ही ऐसे हैं कि मन भी एकाग्र होता चलेगा और श्वास प्रश्वास भी अपने आप बराबर और फिर दीर्घ से दीर्घतर होते चलेंगे। सिर्फ़ धैर्य और शांति की ज़रूरत है।

कम से कम १५ मिनट का समय शवासन में देना चाहिये और २४ घंटे में दो या तीन बार शवासन कर सकते हैं। इसके लिये सर्वोत्तम समय एक तो आसनों के बाद (सुबह या शाम, जब कभी भी आसनों का व्यायाम करते हों) दूसरा दोपहर के भोजन के पहिले और स्नान, प्राणायाम के बीच में, यानी नहाने के बाद और खाने के पहले, और तीसरा रात्रि में खाने के बाद और सोने से पहले।

शुरू में साधकों को शवासन में श्वास की गति लक्ष्य करते-करते नींद आने लगती है। यह लक्षण तो अच्छा है क्योंकि इसके माने यह हैं कि आपको मानसिक शान्ति आरही है। पर एकदम सो न जाना चाहिये। हाँ रात्रि में शवासन करते-करते दाहिने करवट हो कर सो जाना बहुत ठीक है।

पर जो लोग केवल शिथिलीकरण के लिये शवासन करते हैं या करना चाहते हैं। इनके लिये केवल पहिले स्तर तक का ५-१० मिनट का अभ्यास काफी होगा।

लाभ

हम कह चुके हैं कि शवासन का लाभ शिथिलीकरण और आध्यात्मिक तथा मानसिक उत्कर्ष में हैं। इसे करने के बाद साधक फिर से तरोताज़ा हो दिन भर में जितनी शक्ति ख़र्च किये रहता हैं वह फिर से प्राप्त कर लेता है। और साथ-साथ मानसोपचार (ऑटो सजेशन) की क्रिया भी होती

चलती है यानी प्रत्येक अंग निरोग हो जाता है। जिस अंग के बारे में आप ज़्यादा सोचेंगे (कि अमुक अंग ढीला हो रहा है) वही अधिक स्वस्थ होगा। या आपके जिस अंग में कोई कमज़ोरी या दोष हो, उसी को ज़्यादा सोचिये और वह धीरे-धीरे निर्दोष स्वस्थ और सबल होता चलेगा।

शिथिलीकरण हो जाने से सारे शरीर की पेशियाँ सबल और सजीव हो उठती हैं। थकावट बिलकुल दूर हो जाती है।

सारा स्नायु संस्थान ताज़ा और स्वस्थ होकर मानसिक शान्ति विराजने लगती है।

चिकित्सात्मक प्रयोग (१) बढ़े हुये रक्त चाप के लिये शवासन अक्सीर है।

(२) मिजाज़ के चिड़चिड़ापन के कारण जो ख़राबियाँ (बदहज़मी, क्षुधानाश, क़ब्ज़ियत आदि) होती है वह दूर हो जाती हैं। अँग्रेज़ी में जिन्हें न्यूरेस्थेनियाँ और 'नर्वस ब्रेकूडाउन' कहते हैं उनके लिये भी शवासन श्रेष्ठ है।

(३) उन्माद, भ्रम, मूर्छा आदि में भी इस से पूर्ण लाभ होता है।

नोट (१) शवासन की विशेषता यही है कि जिसे हमने 'प्रथम स्तर' कहा है उसी के अनुसार केवल श्वास प्रश्वास पर ध्यान रखते-रखते ही द्वितीय स्तर और फिर तृतीय स्तर पर साधक अपने आप पहुँच जायगा और उसको पता भी न चलेगा। पर शर्त यह है कि मन भटकने न पावे। मन को श्वास गति पर केंद्रित करने ही इसे पता चलेगा कि क्रमशः श्वास और प्रश्वास दोनों बराबर और फिर दोनों दीर्घ (लंबी) होती जा रही हैं। यह लेखक का निजी अनुभव है।

(२) जो लोग आसन तथा प्राणायाम दोनों एक ही बैठक में करते हैं उन्हें चाहिये कि दोनों के बीच में १५ मिनट का शवासन डाल दें; यानी पहले सब व्यायामात्मक आसन, फिर शवासन, और फिर किसी ध्यानात्मक आसन में जमकर बैठकर प्राणायाम करें। इतना करने पर दिन भर के काम के लिये नयी स्फूर्ति मिल जाती है और कभी कोई शिकायत नहीं होती।

कुछ अन्य आसन तथा क्रियायें

मुख्य आसनों का वर्णन ऊपर हो चुका। इस अध्याय में कुछ पिछले आसनों के विकास, कुछ अन्य आसन, तथा योग की कुछ वे विशेष क्रियायें दी जायँगी कि जो शरीर की अन्दरूनी सफ़ाई के लिए ज़रूरी हैं। क्योंकि यह मानो हुई बात है कि पुराने कपड़े पर नया रंग चढ़ाने के लिये उसे पहले धुलवा लेना अनिवार्य है। इसी प्रकार व्यायामात्मक आसनों का रंग शरीर पर तभी आता है जब कि शरीर अंदर से स्वच्छ हो जाय। यद्यपि यह विषय ठीक आसन व्यायाम के अंतर्गत नहीं आता और न अभी तक अंग्रेज़ी या हिन्दी की किसी आसन की पुस्तक में इनका वर्णन ही दिया गया है। पर जब इन क्रियाओं के बिना आसनों का पूरा फल ही नहीं होता तो इनके अभाव में आसनों पर कोई भी ग्रंथ अधूरा ही समझा जायगा; अस्तु—

पहले हम कुछ पिछले आसनों के विकासों को लेते हैं।

उत्थित पद्मासन

पद्मासन की क्रिया पहले बताई जा चुकी है। इसका एक विकास 'उत्थित' पद्मासन के नाम से प्रसिद्ध है। 'उत्थित' शब्द के अर्थ होते हैं—'उठा हुआ'। इस में पद्मासन लगा कर आसन को हाथ के सहारे ऊँचे उठा लिया जाता है—विधि देखिये—

नाम उत्थित

पहले पद्मासन लगाइये। फिर हाथों को प्रस्फुटित कमलदलवत् गोदी में न रख कर बग़ल में जमीन पर टेक दीजिये और फिर दोनों हथेलियों पर पूरे शरीर का भार देकर आसन को ज़मीन से ऊपर (क़रीब ६ इंच) उठा दीजिये, पर पद्मासन की पलथी कहीं से ढीली या डाँवाँडोल न होने पावे। कुछ

विधि

तथा इसी तरह टँगे रहिये। फिर धीरे-धीरे (दोल) झुलने की तरह आगे पीछे आसन को झुलाते रहिये। कुछ योगी इसे 'दोलासन' भी कहते हैं इसी कारण। जब तक अच्छा लगे तब तक झूलिये फिर ज़मीन पर आकर पद्मासन खोल दीजिये।

यह एक तफ़रीह का आसन है। इस में पद्मासन का वह आध्यात्मिक गुण तो नहीं है क्योंकि झूलन और ध्यान एकाग्र करना ये दोनों बातें एक साथ असंभव हैं। पर पद्मासन के व्यायामात्मक लाभ के साथ इस में कुछ और लाभ मिल जाते हैं। हाथों तथा कंधों की पेशियों को एक अच्छा संचार मिल जाता है क्योंकि दोल या झूलने या पलने के दोनों खंभों का काम दोनों हाथों से लिया जाता है और फलतः हाथ कंधे और पुट्ठों के स्नायु सबल होते हैं।

लाभ

पर मुख्य लाभ इसका तफ़रीह या परिवर्तन में है। कई कसरती आसन करने के बाद थोड़ा-सा यह खिलवाड़-सा आसन व्यायाम में दिलचस्पी और आराम का अनुभव पैदा करता है।

बद्ध-पद्मासन

पद्मासन का एक विकास (उत्थित पद्मासन) की विधि हम ऊपर दे चुके। 'बद्ध पद्मासन' दूसरा विकास है पद्मासन का। संस्कृत में 'बद्ध' कहते हैं 'बंधे हुये' को। इसमें पद्मासन को (हाथ रूपी रस्सी से लपेट कर) बाँध दिया जाता है (चित्र देखिये)।

नाम

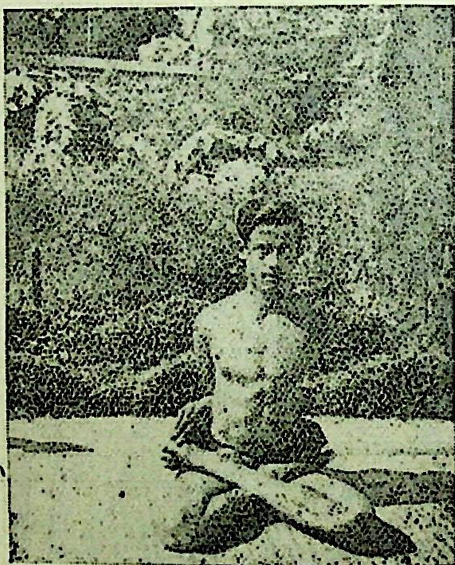
आसन पर रीढ़ की हड्डी बिलकुल सीधी कर के बैठ जाइये। दोनों पाँव सामने फैलाकर बाएँ पाँव की एँड़ी बाँएँ हाथ से उठाकर दाहनी जाँघ के ऊपर इस तरह रखिये कि एँड़ी नाभि से बिलकुल सटी हुई रहे। इस के बाद दाहने पैर को उसी तरह मोड़ कर उसे बाँईं जंघा पर रखते हुये उसकी एँड़ी नाभि की दूसरी बग़ल में जमाइये। यह विधि पद्मासन की ही है, पर इस में रान का मोड़ ज़रा ज़्यादा गहरा होता है और एँड़ी ज़रा ज़्यादा समेट कर नाभि से सटाई जाती है जिस से आसन 'बाँधा' जा सके। मामूली पद्मासन फैला हुआ (खिले हुये कमल की तरह) होता है पर बद्ध पद्मासन कमल की बंद या अधखिली कली की शक्ल में बनता है पूर्णावस्था में, बस यही ख़ास फ़र्क़ है।

विधि

दोनों एंड़ियाँ जमने के बाद बद्ध पद्मासन की विशेष क्रिया शुरू होती है। दोनों पैर के घुटने दृढ़तापूर्वक जमीन पर जमा रखिये और रीढ़ बिलकुल सीधी तनी हुई कर लीजिये। फिर बायाँ हाथ पीठ के पीछे से घुमा कर पेट के सामने लाते हुये उसी से बायाँ अँगूठा पकड़ लीजिये। ऐसा करने के लिये धड़ को जितना आगे या पीछे झुकाना पड़े झुका लीजिये और अँगूठा पकड़ में आने के बाद फिर रीढ़ सीधी तान दीजिये। यह काम काफ़ी कठिन है, और मोटे पेट वालों का तो कहना ही क्या, दुबले पतले आदमी भी अक्सर अँगूठा नहीं पकड़ पाते। शुरू में

अँगूठे तक हाथ पहुँच जाय तो इतना ही काफ़ी समझिये। यह आधा हुआ।

फिर एक अँगूठा पकड़ने के बाद दाहिने हाथ को उसी तरह घुमा कर दाहिना अँगूठा थाम लीजिये। दोनों अँगूठे पकड़ में आजाने के बाद सीधे होकर बैठ जाइये। यही है इसकी पूर्णावस्था। इस अवस्था को आधी मिनट से आरंभ कर तीन मिनट तक बैठ सकते हैं।



चित्र नं० ४१

रीढ़ को सीधी और लोचदार बनाने के श्रेष्ठ आसनों में एक यह भी है। रीढ़ बिलकुल सीधी हुये बिना यह आसन होही नहीं सकता। और इस का फल यह होता है रीढ़ निर्दोष होती है जिससे सारे शरीर का स्वास्थ्य

लाभ

सुधरता है। रीढ़ के सिवाय, हाथ, बग़ल, रान, पेड़ू इन सबीका अच्छा ख़ासा तोड़ मरोड़ इस आसन में होता है जिससे इन अंगों के एक-एक सेल खुल जाते और नवीन रक्त संचार से उत्फुल्ल हो उठते हैं।

नोट—इस में जल्दी न करना चाहिये चाहे पूर्णावस्था में आने तक महीनों लग जाँय।

पादहस्तासन

नाम — खड़े होकर हाथों से पैर छुये जाते हैं इसलिए इसको पादहस्त आसन कहते हैं। 'पाद' पैर तथा 'हस्त' हाथ को कहते हैं।

इसको हम पूर्ववर्णित 'पश्चिमोत्तान' नामक आसन का एक विकास या एक 'प्रकारांतर' कह सकते हैं। क्योंकि दोनों में मुख्य अंतर केवल इतना ही है कि वह बैठ कर किया जाता है और यह खड़े होकर। (चित्र नं० ७ देखिये)।

विधि — सीधे खड़े हो जाइये। फिर आगे की ओर धीरे-धीरे झुकते हुये दोनों हाथों की हथेलियों को पाँवों के ऊपरी अँगूठों पर जमा दीजिये। कुछ लोग हथेलियों को पाँवों के बग़ल ज़मीन पर जमाना पसंद करते हैं। पर जिसमें आपको सुविधा हो वही करना ठीक है, किन्तु हर हालत में दोनों घुटने आदि से अंत तक बिलकुल न मुड़ने पावें और कस कर तने हुये रहें यही है इस आसन की ख़ास बात। इसके बाद पश्चिमोत्तान आसन की तरह साँस बाहर निकालिये और गर्दन को धीरे-धीरे ज़मीन की ओर झुकाते चलिये। साँस भीतर न जाने पावे जब तक कि आप झुके हुये रहें। जहाँ तक आसानी से झुक सकें झुकते चलिये। पूर्णावस्था में नाक दोनों घुटनों के बीच में हो जानी चाहिये, पर यह अवस्था काफ़ी अभ्यास के बाद आवेगी। शुरू में ज़ोर या झटका देना हानिकर होगा।

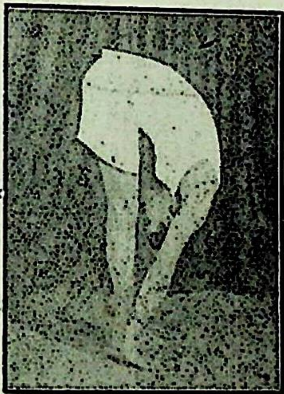
पूर्णावस्था में पहले महीने तक ५-१० सेकंड से ज़्यादा न रहिये, और तीन बार से ज़्यादा न करिये। फिर अभ्यास और अपना स्वास्थ्य स्वयं बतावेगा कि कितना आपको बढ़ाना चाहिये।

पादहस्त को हम पश्चिमोत्तान का प्रथम विकास कह सकते हैं।

लाभ — इसके लाभ वही हैं जो पश्चिमोत्तान के। यह यों भी जब कभी (खाने के तीन घंटे इधर या उधर) इच्छा हो थकावट या सुस्ती दूर करने के लिये दो तीन बार कर सकते

हैं। यदि कहीं बैठने की सुविधा न हुई, जैसे सफर आदि में, तो खड़े-खड़े भी कई आसन कर लिये जा सकते हैं।

यह आसन स्त्रियों के लिये भी उतना ही उपयुक्त है जितना पुरुषों के लिये। यह मुख्यतः व्यायामात्मक आसन है।



चित्र नं० ४२

चर्वी, मुटापा आदि दूर करने के लिये यह ख़ास आसन है।

जिनको जीर्ण कोष्ठवद्धता का रोग है या जिनके जोड़ों या रीढ़ में दर्द रहता हो उन्हें यह आसन तब तक के लिये बच जाना चाहिये।

पश्चिमोत्तान तथा इसके चारों विकासों (तीन विकास आगे कहेंगे) का यह प्रभाव है कि थोड़ा करने से ये कब्जियत भगाते हैं और ज़्यादा करने से कब्जियत पैदा करते हैं। इसलिये किसी को बहुत ज़्यादा ये आसन न करना चाहिये। बात यह होती है कि इनका ख़ास असर होता है पेट तथा उसके अन्दर के सारे पाचन और विसर्जन अंगों पर। जो कुछ भी खाया पिया हुआ या पुराना मल एकत्रित रहता है अँतड़ियों में वह सब इनके द्वारा भस्म हो जाता है। क्षुधा बहुत बढ़ जायगी, जो कुछ खाइए सभी हज़म हो जायगा। पर पाख़ाना बहुत थोड़ा होगा।

त्रिकोण-आसन

इसे हम पश्चिमोत्तान आसन का द्वितीय विकास कहेंगे। इस को 'त्रिकोण' आसन इस लिये कहा गया है कि पूर्णावस्था में साधक की आकृति 'तिकोनी' हो जाती है (चित्र देखिये) संस्कृत में 'त्रिकोण' शब्द के अर्थ होते हैं 'तीन कोने'।

नाम

इसमें और पादहस्त में थोड़ा ही अंतर है। पहले पादहस्त की भाँति खड़े होइये। पादहस्त में दोनों पाँव मिलाकर खड़े होते हैं। पर इस में दोनों पाँव, सुविधानुसार दो से तीन फीट तक के फासले पर रक्खे जाते हैं।

विधि

फिर झुक कर बाएँ हाथ से बाएँ पैर का अँगूठा पकड़िये और दाहिना इस तरह ऊपर (आकाश की ओर) तान दीजिये कि दोनों हाथ एक सीधी लकीर में हो जाँय ख़ास बात ध्यान में रखने की यह है कि हाथ या पैर कुहनी या घुटने के पास से मुड़ने न पावें।

पाँच सेकेंड एक हाथ से अँगूठा पकड़े रहनें के बाद दूसरे हाथ से दूसरे पाँव का अँगूठा पकड़िये।

दोनों ओर इसी तरह कम से कम २-४ बार कीजिये।

त्रिकोण आसन एक दूसरे प्रकार से भी किया जा सकता है। जिस में व्यायाम और रीढ़ का मरोड़ ज़्यादा होता है।

प्रकारांतर

फ़र्क़ केवल यही है कि बाएँ हाथ से दाहिने का और दाहिने हाथ से बाएँ का अँगूठा पकड़ना पड़ता है बारी-बारी से और इस में रीढ़ का बगली मरोड़ लगभग वैसाही हो जाता है जैसा अर्ध मत्स्येन्द्र में। दम का इस में ऐसा हिसाब रखना चाहिये कि नीचे झुकते समय फेफड़े खाली रहें और ऊपर उठते समय भर लिये जाएँ।

ये आसन मुख्यतः क्यों, एकमात्र व्यायामात्मक हैं। इनका अध्यात्मिक
लाभ
०
मूल्य नह ' के दराबर हैं। इन आसनों को (पश्चि-मोत्तान तथा उसके चारों विकासों को पाश्चात्य व्यायाम विशारदों ने बहुत ज़्यादा अपनाया है)।



चित्र नं० ४३

त्रिकोण आसन के लाभ पादहस्त से ही मिलते जुलते हैं। अन्तर केवल यह है कि यह ज़रा जल्दी-जल्दी और बारंवार करने का आसन है।

जिनकी टाँगों में कोई ऐव या टेढ़ापन (धनुषाकृति) आ गया है उनके ऐव इस आसन से कुछ दिन में दूर हो सकते हैं।

जानुशिरासन

इस को हम पश्चिमोत्तान का तृतीय विकास कहेंगे। इस को 'जानु-शिर' इसलिये कहते हैं कि पूर्णावस्था में इस में

नाम

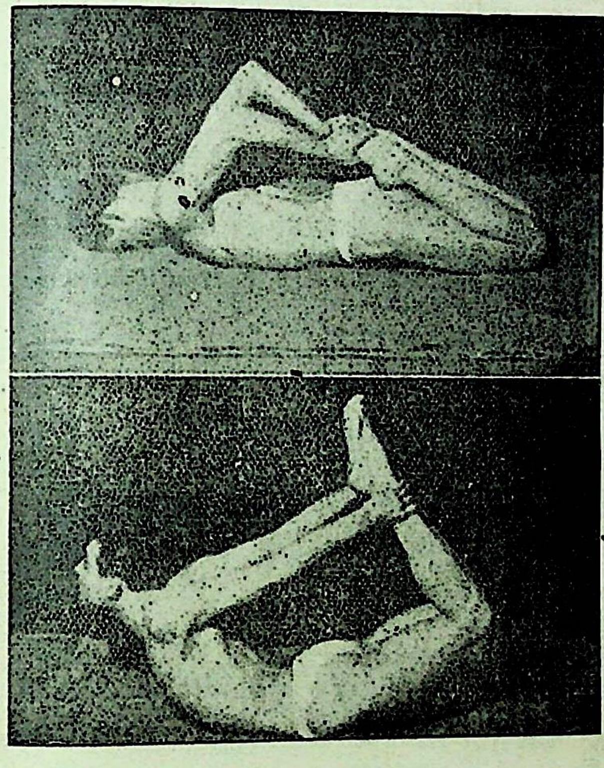
सिर को झुका कर घुटने पर रखना पड़ता है। संस्कृत 'जानु' शब्द के माने घुटना, और 'शिर' के मानी सिर के होते हैं।

विधि—पहले पश्चिमोत्तान की विधि से दोनों पाँव फैलाकर बैठ जाइये। फिर सिद्धासन की विधि मे एक पाँव (बायाँ) घुटने से मोड़ कर उसकी एँड़ी गुदा और जननेन्द्रिय के बीच वाले भाग के नीचे जमा दीजिये। दाहिना पाँव फैला रहने दीजिये (दाहना पाँव दाहनी ओर ज़रा तिरछा होकर फैला रहे तो अच्छा) फिर दोनों हाथों से दाहने पाँव का अँगूठा थाँमिये और ठुड्डी जालन्धर बंध की तरह जमा कर झुकिये। साँस या तो बाहर निकाल रखिये या कुंभक किये रहिये (इसकी एक विशेष क्रिया आगे बतावेंगे)। धीरे धीरे झुकते हुये घुटने पर सिर रख दीजिये। पाँच सेकेंड रुकिये, फिर धीरे धीरे सीधे होकर फेफड़ों में ताजी हवा भरने दीजिये और जालंधर बंध उठने के साथ ही खोल दीजिये।

यह हुआ एक ओर का जानुशिर आसन।

अब उसी प्रकार दाहना पाँव मोड़ कर वहीं पर स्थापित कीजिये और बायाँ फैला दीजिये। फिर दोनों हाथों से बाएँ पैर का अँगूठा पकड़ कर सिर बाएँ घुटने पर रखिये।

दो बार बायें और दो बार दाहने घुटने पर सिर रखिये।



चित्र नं० ४४

इस जानुशिर आसन के साथ साथ पूरक, कुंभक और रेचक
महामुद्रा तीनों प्राणायाम यदि करते चलें तो 'महामुद्रा' नाम
की क्रिया हो जाती है।

यदि जानुशिर आप को सिद्ध हो गया है तो महामुद्रा आप

विधि आसानी से कर सकते हैं। हाथों से अँगूठा पकड़ने के पहले जो पाँव फैला हुआ हो (पहले दाहना) उसी नथनों से (बायां नथना उँगलियों से बंद कर) फेफड़ों में पूरी सांस भर लीजिये (पूरक)। फिर जालंधरबंध लगा कर साँस को रोक रखिये। और हाथों से अँगूठा पकड़िये और इसी (कुंभक) हालत में सिर को घुटने पर रखिये। फिर उठते समय सांस धीरे धीरे (रेचक) फेंकते हुये सीधे हो जाइये।

इस प्रकार फिर बाएँ घुटने पर सिर रखिये। दाहिना पाँव मोड़ कर पूरक और बाएँ घुटने पर कुंभक होगा। इसी प्रकार बारी बारी से कीजिये, कम से कम दो बार।

जानुशिर के साथ महामुद्रा का गुण हठयोगप्रदीपिका में यह लाभ लिखा है कि इसके फल से खाया हुआ विष भी अमृत हो जाता है।

मामूली जानुशिर के लाभ वही हैं जो पश्चिमोत्तान तथा उसके अन्य विकासों के। ये सभी वास्तव में हाज़मा दुरुस्त करने और मुटापा दूर करने के तथा सदा 'फिट' रखने के आसन हैं।

चक्रासन

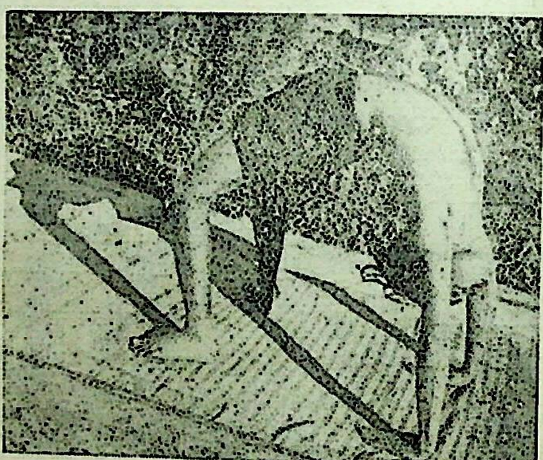
नाम यह उल्टा पश्चिमोत्तान है, और इस दृष्टि से हम इसे भी पश्चिमोत्तान का एक विकास ही (चतुर्थ विकास) कहेंगे। इसको 'चक्रासन' इस लिये कहते हैं कि इस की पूर्णावस्था में साधक की आकृति 'चक्र' (पहिया) के समान हो जाती है।

विधि पश्चिमोत्तान में साधक पाँव के अँगूठे की ओर मुड़कर हाथ से अँगूठा छूता है। चक्रासन में साधक खड़े होकर उल्टा मुड़कर उल्टे हाथ की उँगलियों से एँड़ी छूता है, या कम से कम कोशिश करता है। पूर्णावस्था या पूरी पहिया या वृत्त तो तभी बनेगा जब कि हाथों की उल्टी हुई उगलियां एँड़ी तक पहुँच जायं! पर इतना मुड़ने वाला हज़ारों में कोई होता है। दिये हुये चित्र में हाथ की उँगलियों और एँड़ी में काफ़ी फासला है। इसकी उक्त पूर्णावस्था तो पेशेवर कसरत दिखलाने वाले देशी नट या चीना सर्कस करने वाले (एक्रोबैट्स) ही कर सकते हैं। और फिर उतनी पूर्णावस्था की हमें ज़रूरत भी नहीं है। चित्र में जितना दिया गया है उतना भी हम देह को मोड़ने का अभ्यास कर ले सकें तो स्वास्थ्य के लिये बहुत है।

इसकी विधि कई तरह से है। एक तो सीधे खड़े होकर है। पांवों के बल खड़े हो हाथों को पीछे कूल्हे पर रक्खे हुये कमर से नीचे की ओर मुड़ते चले जाइये, गर्दन पीछे घुमा, आँखों से एँड़ी को देखते हुये। जब हथेली ज़मीन से लग जाय तो फिलहाल उसी को पूर्णावस्था समझिये और क्रमशः हथेली पैरों की ओर जहाँ तक लेजा सकिये ले जाइये।

दूसरी विधि कसरत का तमाशा दिखाने वालों की है।

दूसरी विधि — वह पहले दोनों हथेलियों को जमीन से लगा कर पावों को आसमान में तान देते हैं (शीर्षासन की भाँति) फिर तने हुये हाथों पर शरीर का पूरा भार सँभाले हुये हाथों के बल कुछ कदम चलते हैं। इसको बिछिया चाल कहते हैं क्योंकि कसरती की आकृति वा चाल डंक ताने हुये बिच्छू की भाँति रहती हैं। चलते चलते ऊपर के तने हुये पांव क्रमशः ज़मीन की ओर लटकने लगते हैं और फिर वह ज़मीन से लग जाते हैं। देहाती लोगों में अहीरवर्ग (खास कर कम उम्र लड़के) यह कसरत बहुत करते हैं।



चित्र नं० ४५

इसकी एक सब से सरल विधि है कि पहले ही से चित लेट जाइये दोनों पाँवों को मोड़ कर और फिर मत्स्यासन की भाँति हाथों को पीछे कर उन्हीं के सहारे कमर को पूर्णावस्था तक उठाने का कोशिश कीजिये।

तीसरी विधि

इस का एक और विकास है जिसे 'चकरडण' या 'चक्रदंड' कहते हैं। इसी उक्त पूर्णावस्था में घूमते घूमते डण लगा लेना और फिर सीधा होना और पहिया की तरह उलट्ते पुलटते जाना बस यही इसकी क्रिया है। यह ठीक तौर पर उस्ताद से ही सीखी जा सकती है, लिख कर बताना बहुत कठिन है।

लाभ

यह स्पष्ट है कि चक्रासन तथा उसकी विकसित क्रियायें बड़ी बेढब कसरते हैं और शरीर की एक एक नस को तोड़ मरोड़ देना होता है। खास कर मेरुदंड का और कंठों का इतना व्यायाम और किसी क्रिया में नहीं हो सकता और तद-नुसार इस के लाभ समझने चाहिये।

चालीस की उम्र पार करने के बाद इन क्रियाओं के पीछे न पड़ना चाहिये।

योग-मुद्रा

यह आसन वास्तव में पद्मासन का एक विकास है। या हम इसे मत्स्यासन का उल्टा कह सकते हैं जो स्वयं पद्मासन लगा कर किया जाता है। पद्मासन की भाँति पैरों को जमा कर पीठ के बल मुड़ने पर मत्स्यासन बनता है और सामने मुँह के बल मुड़ने पर योग-मुद्रा हो जाती है।

पद्मासन से ज़रा ज़्यादा दोनों एँड़ियों को चढ़ा कर पेट में घुसा-सा दिया जाता है इसमें।

इसको योगमुद्रा इस लिये कहते हैं कि इसके अभ्यास द्वारा कुंडलिनी को जागृत करने में सहायता मिलती है।

विधि

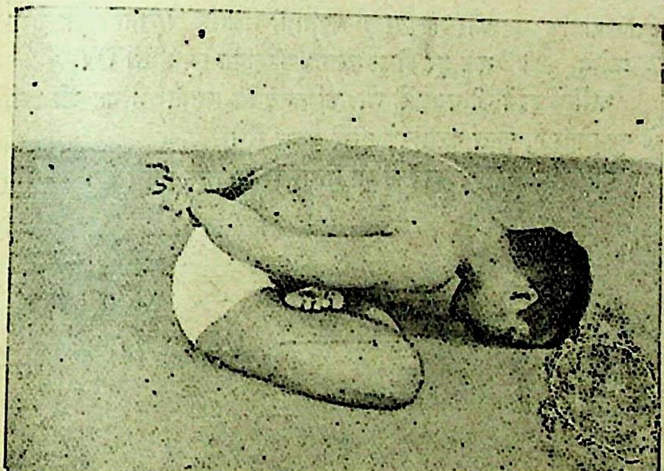
मत्स्यासन की विधि से दोनों पांव (पहले दाहना और फिर बायां) घुटनों से मोड़ एक दूसरे पर रखते हुये पेड़ू की जड़ में जमा दीजिये। फिर दोनों हाथ पीठ के पीछे ले जाकर एक से दूसरे की कलाई थाम लीजिये। फिर इसके बाद धीरे धीरे सामने की ओर झुकते चले जाइये और जब माथा ज़मीन पर टिक जाय तो इसकी पूर्णावस्था समझिये। पर जल्दी न कीजिये और न कहीं पर झटका या ज़रूरत से ज़्यादा जोर लगाइये। साँस मामूली तौर से लीजिये जब तक आराम से रह सकिये, और फिर सीधे हो जाइये। इसे तीन बार तक कर सकते हैं।

दूसरा प्रकार

योगमुद्रा का एक दूसरा प्रकार है जो ख़ासकर उनके लिये है जिनको जीर्ण कोष्ठबद्धता है यो जिनके पाचन यंत्र (पेट की नसें) अपने ठीक स्थान से हट कर इधर उधर खिसक गये हैं। क्योंकि पुरानी कब्जियत या अजीर्ण आदि आमतौर से तभी होते हैं जब ये नसें अपनी जगह छोड़ देती हैं।

यह द्वितीय प्रकार की योगमुद्रा उनको फिर अपनी जगह पर लाने में सहायक लेती हैं।

इसमें और पहिली योग मुद्रा में केवल हाथों की स्थिति में फ़र्क है। इस में हाथ पीठ के पीछे न ले जाकर सामने दोनों बगलों पर रख कर एक गेंद सा बना लिया जाता है जिससे झुकते समय वह गेंदे पेट में गड़ती चले। हाथ की मुट्ठी सी बँधी रहे एँड़ियों के ऊपर और इसी हालत में पेट का दबाव मुट्ठी रूपी गेंद पर पड़े।



चित्र नं० ४६

झुकते समय साँस बाहर को फेंकना चाहिये। द्वितीय प्रकार की पूर्णावस्था में पाँच सेकेंड से ज़्यादा न रहना चाहिये। इसको शक्ति के अनुसार ४-५ वार कर सकते हैं। स्नायुसंस्थान की दुरुस्ती या अभ्यात्मिक दृष्टि से पहिले प्रकार की पूर्णावस्था में एक ही बार देर तक (एक से पाँच मिनट तक) अभ्यास बढ़ाते रहना चाहिये।

व्यायामात्मक लाभ — पेट की नसों को अपने ठीक स्थान पर करने तथा उन्हें सबल और स्वस्थ बनाने में योगमुद्रा सहायता करती है।

स्नायुसंस्थान की गड़बड़ी भी इससे दूर होती है। देर तक एक आसन में योगमुद्रा कुंडलिनी को जगाने में सहायक तो है ही। जो लोग योग विद्या से ज़्यादा आगे जाने की इच्छा रखते हैं उन्हें देर तक इसकी पूर्णावस्था में पड़े रहना चाहिये।

चिकित्सात्मक प्रयोग — इसमें एँड़ियों का दबाव कुछ ऐसा पेट पर (आमाशय और मलद्वार) पड़ता है जिससे पुराना सूखा हुआ मल दूर होकर पुरानी कब्ज़ियत दूर होती है।

नसों के हटने की वजह से जो कब्ज़ियत हो जाती है वह भी इसी से दूर होती है, ख़ास कर इसके दूसरे प्रकार से।

वीर्य दोषों को दूर करने में भी योगमुद्रा सहायक होती है।

———

शरीर की आभ्यंतरिक स्वच्छता के लिये कुछ विशेष योगिक क्रियायें।

हम कह चुके हैं कि आसनों से पूर्ण लाभ उठाने के लिये शरीर की अंदरूनी सफ़ाई ज़रूरी है। क्या आधुनिक वैज्ञानिक स्वास्थ्य, व्यायाम और चिकित्सा विशारदों के अनुसार और क्या प्राचीन (योगासनों के आविष्कर्ता) योगियों के अनुसार पूर्ण स्वास्थ्य और कार्य सिद्ध[1] के लिये शरीर की भीतरी स्वच्छता सबसे अधिक आवश्यक है।

इस संबन्ध में प्राचीन ऋषियों का कथन तो यह है कि नाड़ियों में मल अथवा विकार एकत्र हो जाने के कारण श्वास बीच (इड़ा और पिंगला के बीच की सुषुम्ना) से नहीं चल पाता, और जबतक बीच से प्राण वायु का आवागमन नहीं स्थापित होता तब तक न तो मन में शांति आती है और न कोई कार्य सिद्ध होता है। जब शरीर को भीतर स्वच्छ कर साधक सुषुम्ना में प्राण का संचार कर लेता है तब शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य तो बायें हाथ का खेल हो जाता है, उसे दिव्य आलोक प्राप्त होकर अति-मानवी कार्य सिद्ध करने की शक्तियां प्राप्त होने लगती हैं।

पर इस स्वच्छता को प्राप्त करने की कुछ विशेष क्रियायें भी बताई हैं योगियों ने, और वह ऐसी हैं जिसे सभी[2] कर सकते हैं। योग क्रियायों की विशेषता यही है कि वह सबके लिये सुलभ हैं। इसके लिये ऐसी कोई क़ैद नहीं है कि आदमी पूर्ण स्वस्थ, तगड़ा या युवा हो वही इनकी कसरतों

---

१ मलाकुलासु नाडीषु मारुतौ नैव मध्यमः।
कथं स्यादुन्मनी भावः कार्य सिद्धिः कथं भवेत्॥

२ युवावृद्धोऽति वृद्धोवा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा।
अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति सर्वं योगेष्ववंदितः॥

या क्रियाओं को कर सकता है। वह कहते हैं कि जवान हो या बूढ़ा या बहुत बूढ़ा हो और चाहे कमज़ोर और दुबला ही क्यों न हो, अगर निरालस होकर नियम से अभ्यास करता चले तो उसे सिद्धियाँ अवश्य प्राप्त होंगी। इनमें टके का ख़र्च नहीं, न कोई औज़ार या ख़ास साधन की ज़रूरत है न खाने पीने में कोई ख़ास ख़र्चीली चीज़ की ज़रूरत है। बस शर्त यह है कि आप नियम से ठीक समय पर नित्य अभ्यास करते चलें और क्रम क्रम से बढ़ावें। केवल किताब पढ़ने से नहीं 'होगा'[1] योगसिद्धि प्राप्त करने के लिये इन क्रियाओं को पहले सिद्ध करना होगा।

शरीर की सफ़ाई के लिये योगियों ने छः क्रियायें (षट् क्रिया) बताई हैं जो बहुत सरल हैं और सब उनसे लाभ उठा सकते हैं। इनके नाम हैं—

नौलि नेति, धौति, वस्ति, कपालभाति और त्राटक। इनके सिद्धि करने के बाद 'वज्रौलि' और 'शंख प्रक्षालन' नाम की दो क्रियाएँ और हैं पर इनसे हमको अभी प्रयोजन नहीं है और उक्त छः क्रियाओं में भी प्रकार भेद हैं। जैसे तीन प्रकार की धौति और दो प्रकार की नौलि। पहले हम नौलि को लेते हैं।

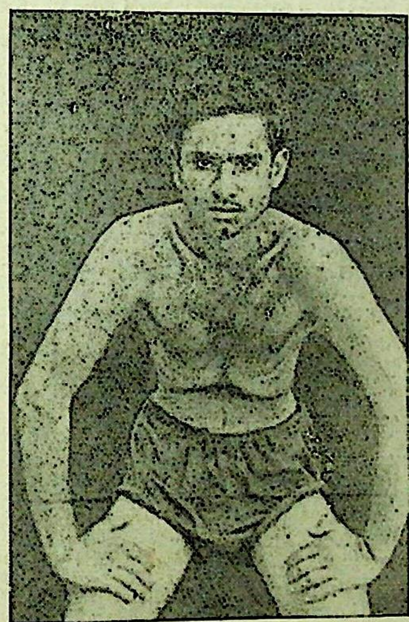
---

१ क्रियायुक्तस्तु सिद्धिः स्यादक्रियस्थः कथं भवेत्'।
न शास्त्रपाठमात्रेण योगसिद्धिः प्रजायते॥

उड्डीयान और नौलि

विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि उक्त छः क्रियाओं में कुछ का संबंध पेट की सफ़ाई से और कुछ का ब्रह्मांड की सफ़ाई यानी गर्दन से ऊपर जितनी ज्ञानेंद्रियाँ हैं उनकी सफ़ाई से हैं।

उड्डीयान



चित्र नं० ४७

नौलि पेट की सफ़ाई के लिये संसार में वेजोड़ क्रिया है और इसकी पहली सीढ़ी है 'उड्डीयान', जिसकी विधि हम पहले ही उड्डीयान वंध के सिलसिले में बता चुके हैं।

उड्डीयान दो प्रकार से किया जाता है, एक बैठ कर पद्मासन लगा कर और दूसरा खड़े हो कर। जब उड्डीयान के बाद नौलि करना हो तो खड़े होकर ही करना ठीक होगा।

नौलि

पहले दोनों पाँवों को एक या डेढ़ फुट के फासले पर रख दोनों हाथ रान पर घुटने के पास (चित्र नं० ४७ देखिये) स्थापित करते हुए सामने की ओर ज़रा झुककर खड़े हो जाइये और फिर पूर्वोक्त विधि से उड्डीयान बंध लगाइये। पहले फेफड़ों से सारा प्राण वायु बाहर निकाल दीजिये। फिर नकली या झूठी श्वास क्रिया करते हुये कुछ देर उड्डीयान कीजिये। पेट की जितनी नसें और पेशियाँ हैं उनका पूर्ण शिथिलीकरण पहले नितांत आवश्यक हैं और उससे भी पहले झुकते समय कंधे और गर्दन की पेशियों को बताये अनुसार दृढ़तापूर्वक जमा लेना ज़रूरी है। इतना कर चुकने के बाद नौलि की क्रिया शुरू होगी।

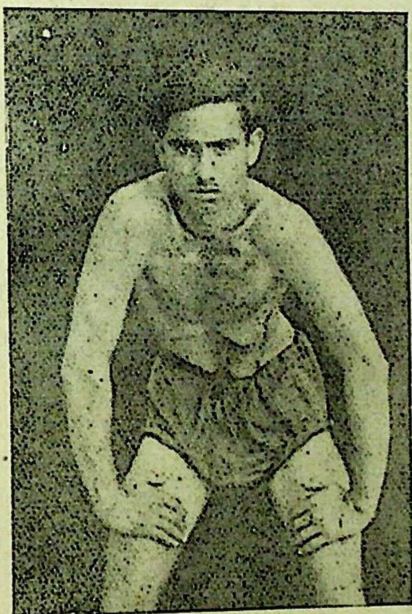
विधि

उड्डीयान बंध लगाकर खड़े होना ही नौलि क्रिया के लिये मानो तैयार हो जाना है। उड्डीयान करना आसान है पर नौलि काफी कठिन है। पहले साल या कम से कम छ महीने तक केवल उड्डीयान सिद्ध करना चाहिये और जब उड्डीयान बिलकुल सिद्ध हो जाय तो नौलि बहुत आसानी से होने लगती है। हम नौलि को उड्डीयान का ही एक विकास कहेंगे।

नौलि की ख़ास क्रिया पेट के दोनों बड़े नलों को बाएँ से दाहिनी और दाहिनी से बाईं ओर घुमाने या 'मथने' की है। जब उड्डीयान बंध ऐसा लगने लगे कि महाप्राचीरा काफ़ी ऊपर उठकर भीतर घुस जाय, और निचला पेट पीठ से एकाकार दिखने लगे और पेट के दोनों नल बीचो बीच साफ़ बाहर निकल कर दिखाई पड़ने लगें तो समझिये कि आप नौलि के योग्य अब हो रहे हैं और अब आप इसकी क्रिया का अभ्यास शुरू कर सकते हैं।

नौलि की विधि उड्डीयान की ही विधि है; नई बात केवल इतनी ही है कि खड़े हो, उड्डीयान बंध लगाये हुये पेट के उन दोनों नलों को घुमाना है। पर सुविधा के लिये हम पूरी विधि संक्षेप से लिखेंगे—

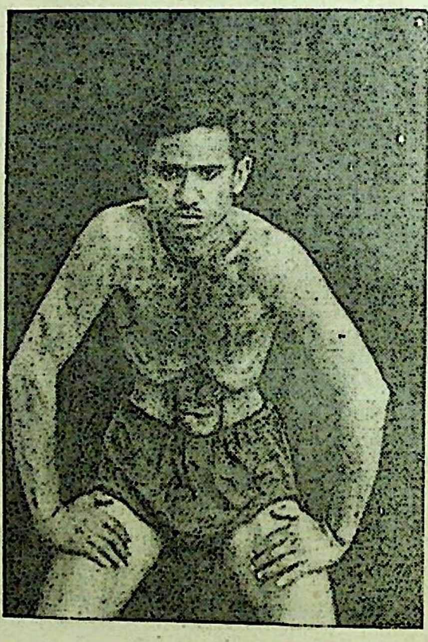
यदि वस्ति क्रिया नहीं करनी हो तो नौलि खड़े होकर करना ही ठीक है और इसके लिये कम से कम छः महीने पहिले से खड़े होकर उड्डीयान



चित्र नं० ४८ वाम नौलि

का अभ्यास करते आना ज़रूरी है जिससे पेट इतना पतला हुआ रहे कि नौलि का निकलना, दिखाई पड़ना और अंत में फिर उनका चलाना संभव हो। जिनका पेट मोटा है या जिनकी अवस्था अधिक है उन्हें उड्डीयान के अभ्यास में ही एक दो साल तक लगाना पड़ सकता है।

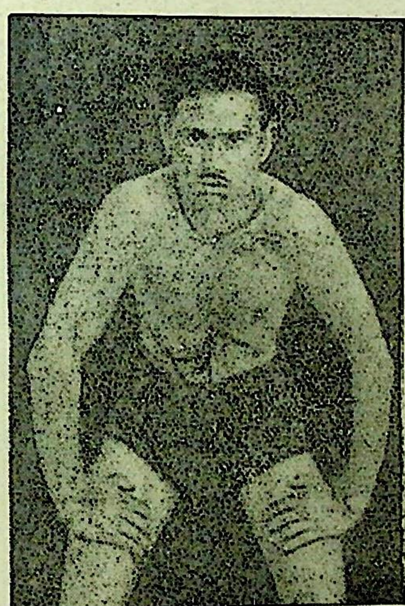
सीधे खड़े हो जाइये। पैरों को डेढ़ फुट के फाँसले पर रख सामने ज़ोर झुक दोनों हाथ रानों पर जमा दीजिये और उन पर (हाथों पर) गर्दन और कंधों का पूरा भार आने दीजिये। फिर सारी साँस बाहर फेंकते हुये पेट खलाइये और महाप्राचीरा को ऊपर (छाती की ओर) चढ़ जाने दीजिये। फिर धड़ को थोड़ा सीधा करते हुये और कुछ इच्छाशक्ति के सहारे पेट के दोनों नलों को बीचोबीच बाहर निकालिये।



चित्र नं० ४९ मध्यम नौलि

यही नलों को बाहर निकालना ही नौलि की मुख्य क्रिया है और ठीक जगह पर भीतरी धक्का देकर जिसने नलों को उभाड़ देना सीख लिया उसने मानों पूरी क्रिया सीख ली फिर आगे के सब काम आसान हो जाते हैं।

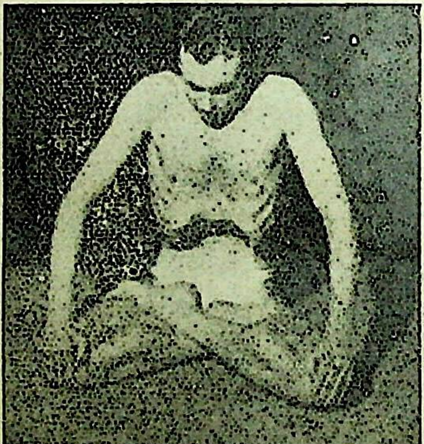
बस शर्त यह कि ठीक जगह पर धक्का या दबाव पड़ना चाहिये। इसमें आधी सफलता उस ठीक जगह के ज्ञान (जहाँ से यह दोनों नल शुरू होते हैं यानी कामाद्रि के ऊपर और नाभि के नीचे से) और आधी प्रबल इच्छाशक्ति के ऊपर निर्भर करती है। ठीक उसी जगह पर भीतर धक्का या ठेलाव पड़ते ही दोनों नल उभड़ आवेंगे और शेष सब पेशियाँ शिथिल हो जायँगी।



चित्र नं० ५० दक्षिण नौलि

प्रारंभ में एक साधारण भूल जो प्रायः सभी नौसिखिये साधक करते हैं वह यह है कि ठीक जगह दबाव डाल नहीं पाते और नलों की जगह पूरा पेट उभाड़ देते हैं, नल निकलता ही नहीं और असाध्य समझ कर छोड़

देते हैं। छोड़ना न चाहिये और न कभी निरुत्साह होना चाहिये। जैसे ही मालूम हो कि ठीक जगह धक्का नहीं पड़ा और नल न निकलकर पूरा पेट निकल रहा है, वहीं पर छोड़ देना और सीधे होकर साँस लेकर फिर से पूरी साँस निकाल कर दुवारा उड्डीयान बंध लगाकर कोशिश करना चाहिये। बड़े आईने के सामने खड़े होकर अभ्यास करने से जल्दी सफलता होगी।



चित्र नं० ५१

एक वार जहाँ नल पकड़ में आया फिर तो वह कामाद्रि से लेकर पसलियों तक (जहाँ ये नल ख़तम होते हैं) बड़ी आसानी से सिकुड़ कर उभड़ आवेंगे। ठीक जगह पर दबाव पड़ने की ज़रूरत है।

यह धक्का या दबाव कुछ कुछ ऐसा होता है जैसा कि कब्ज़ वालों को पाखाने के वक़्त लगाना पड़ता है। फ़र्क़ इतना ही है कि पाख़ाना निकालने वाला दबाव सिर्फ़ नीचे की ओर दिया जाता है और यह नीचे तथा सामने दोनों ओर।

मध्यम नौलि

पहले नल बीचो बीच निकलेंगे और इसे मध्यम (बीच) की नौलि कहते हैं। जब यह निकलने लगे तो पहले इतने ही पर संतोष कर एकाध महीने केवल इसी को पूर्ण रूप से सिद्ध करने में लगाना चाहिये। क्योंकि सबसे महत्व पूर्ण यह मध्यम नौलि ही है। यह है नौलि की प्रथम क्रिया। मध्यम नौलि सिद्ध होने पर दक्षिण और वाम नौलि निकालने की चेष्टा करनी चाहिये, और यह तीनों (मध्यम, दक्षिण तथा वाम) ख़ूब सध जाने पर तब इसकी अंतिम क्रिया, यानी चक्कर देते हुये नौलि को तेज़ी से घुमाना, आरम्भ करना चाहिये। वास्तव में 'नौलि' उन दोनों नलों को बारी-बारी से दायें बायें घुमाने को ही कहते हैं।

एक बार के उड्डीयान में कई बार मध्यम नौलि निकालने और बैठाने का अभ्यास जब हो जाय तब दक्षिण नौलि उभाड़ने की कोशिश करनी चाहिये।

दक्षिण नौलि

जब दक्षिण यानी दाहिनी नौलि उभाड़ना हो तो पहले दाहनी ओर ज़रा झुककर और बाईं ओर का धड़ जरा सीधा रखते हुये दाहनी ओर दबाव डालकर दाहना नल (प्रबल इच्छाशक्ति का उपयोग करते हुये) उभाड़िये और बायें नल को सुप्तावस्था (ढीला) में रहने दीजिये। सिर्फ़ दाहना नल निकलेगा और बायाँ बिलकुल न दिखलाई पड़ेगा।

जब दक्षिण नौलि सिद्ध हो जाय तो ठीक उसी विधि से वाम नौलि निकालिये। क़ायदा यह है कि जिधर का नल उभाड़ना हो उस ओर ज़रा

झुककर तिरछे खड़े होइये और उसके उल्टी ओर का धड़ ज़रा सीधा तान दीजिये, बस उस तरफ़ का (यानी जिधर का धड़ सीधा है उसकी उल्टी ओर का) नल उभड़ आवेगा ।

जब इतना होने लगे तो बारी-बारी से दाहना और बायाँ नल उभाड़ने का अभ्यास आरंभ कर दीजिये । यानी दाहना नल जब उभड़े तो वह पेट के बिलकुल दाहने किनारे पर दिखाई पड़े (आईने में देखते चलिये) और बायाँ बिलकुल ढीला और गुप्त रहे और जब बायाँ निकले तो वह एकदम पेट के बाएँ छोर पर (इच्छाशक्ति द्वारा ठेलकर और भीतरी दवाव के सहारे) दिखे ।

चक्र नौलि

जब मध्यम, दक्षिण और वाम, यह तीनों (नौलियां) सिद्ध हो जायें तो एकाध महीने यहीं तक रहिये । फिर कुछ दिन में स्वतः आप को इन नलों को चक्राकार घुमाने की प्रवृति होगी, यहाँ तक कि आप किसी प्रकार उस प्रवृत्ति को रोक न सकेंगे और एक दिन स्वतः इसकी चतुर्थ या पूर्णावस्था की क्रिया आप कर लेंगे ।

इसकी विधि यों है । दोनों नलों को बारी-बारी एक बार दाहने और एक बार बाएँ इतनी जल्दी जल्दी से ले जाया जाय कि पता न चले और ऐसा ज्ञात हो कि मथानी चल रही है पेट के बीच से । कायदा यह है कि बीच से बायें को बिलकुल बांई ओर ले जाइये और दाहने को बिलकुल ढीला रखिये । साथ ही जैसे ही बायाँ नल डूबे वैसे दाहने नल को उभाड़ और लुढ़का कर एक दम दाहनी ओर ले जाकर फिर बीच में लाइये । बीच में आते ही दाहना नल डूबेगा और तुरत बायां उभड़ेगा ।

इसी तरह सांस बाहर फेंके हुये एक उड्डीयान में तेज़ी से कई बार नलों को उभाड़ने को ही चक्र-नौलि कहते हैं । नल अपने आप इतनी तेज़ी से डूबने उतराने लगते हैं और दाहने से बाएँ या बाएँ से दाहने

आने जाने लगते हैं कि जान पड़ता है पेट में लहरें उठ रही हैं और बैठ रही हैं। दोनों नलों को परस्पर सहयोग करना सिखाना पड़ता है शुरू में।

एक बार में सात चक्कर से ज़्यादा न देना चाहिये। पर अभ्यास बढ़ जाय और साधक हृष्ट पुष्ट हो तो इक्कीस चक्कर तक बढ़ाये जा सकते हैं।

नौलि बिलकुल खाली पेट में करनी चाहिये।

ये (उड्डीयान और नौलि) वास्तव में पेट की सफ़ाई के व्यायाम हैं और पाश्चात्य देशों में इनकी उपयोगिता पर मुग्ध हो

व्यायामात्मक लाभ — इतना ज़्यादा आजकल अपनाया जा रहा है कि आश्चर्य होता है। सब से पहले जर्मनी में इसका प्रचार बढ़ा था। सब से पहले मैक्सिक नाम के एक जर्मन सर्कस व्यायामवीर ने यूरोप में नौलि का खेल दिखा कर (सन् १९१०) दर्शकों को चकित कर दिया था। तमाशा यह है कि आजकल भारतीय व्यायामी प्रायः पाश्चात्य शिक्षकों से नौलि सीखते देखे गये हैं। यह काल की विडम्बना है और क्या !

यह निश्चय है कि पेट की भीतरी सफ़ाई, मालिश और व्यायाम के लिये उड्डीयान और नौलि से बढ़ कर कोई चीज़ नहीं है।

(१) अजीर्ण और पुरानी कोष्ठबद्धता इससे सदा के लिये दूर हो जाती है। जिनको घोर कब्ज़ियत हो वह पाख़ाना

चिकित्सात्मक प्रयोग — जाने के पहले गुनगुने (पाव आध पाव) पानी में आधा नींबू निचोड़ कर या दो रत्ती नमक डाल कर पी लें और फिर उड्डीयान और नौलि करें तो विशेष फ़ायदा हो सकता है।

(२) यकृत, प्लीहा और गुर्दे की सारी शिकायतें इनसे दूर होती हैं।

(३) आमाशय, मलाशय तथा कोष्ठ की शुद्धि के लिये ये चोटी की क्रियायें हैं।

(४) स्त्री और पुरुष दोनों के लिये ये समान रूप से उपादेय हैं।

(५) ऋतु की अनियमितता, समय पर न होना, कष्ट से होना, थोड़ा या बहुत ज्यादे या कई दिन तक लगातार होते रहना आदि दोष तथा प्रदर आदि स्त्रियों के गर्भाशय सम्बन्धी वे सभी रोग जो 'गुप्तरोग' के नाम से प्रसिद्ध है, इनसे दूर होते हैं।

(६) पुरुषों के भी गुप्त रोगों (वीर्य रोगों, नपुंसकता आदि) में भी इन से लाभ देखा गया है।

निषेध

चालीस से ऊपर की उम्र वालों को नौलि के 'चक्कर' में न पड़ना ही अच्छा, यदि वे बहुत पहले से नियम पूर्वक इसका अभ्यास नहीं करते आ रहे हैं। और चालीस के ऊपर वाले यदि उड्डीयान और उसका विकास (यानी नौलि) शुरू करना ही चाहे तो पहले विशेषज्ञ से अपनी परीक्षा करवा लें और उसकी देखरेख में अभ्यास करें यदि वह राय दे।

(२) जिनके पेट में 'टी बी' के किस्म का कोई रोग हो या जिनको 'एपेंडिसाइटिस' हो, या नौलि निकालने में जिनको दर्द होता हो उन्हें तब तक उड्डीयान न शुरू करना चाहिये जब तक ये शिकायतें बिलकुल दूर न हो जाय।

(३) बढ़े हुये रक्तचाप वालों को कभी ये व्यायाम न शुरू करना चाहिये।

(४) जिनको उड्डीयान या नौलि करने में कोई विशेष कष्ट वा दर्द मालूम हो तो उन्हें भी तब तक के लिये इनसे बचना ही अच्छा है।

धौति और वस्ति

शरीर की अंदरूनी सफ़ाई के लिये जो षट् क्रियायें कही गई हैं। उनमें से नौलि धौति और वस्ति ये पेट की सफ़ाई के लिये हैं तथा शेष दिमाग की स्वच्छता के लिये हैं। नौलि का वर्णन ऊपर हो चुका अब यहाँ धौति और वस्ति की क्रियायें बताई जाती हैं। ये दोनों योगियों के लिये जुलाब या एनीमा का प्रतिविधित्व करते हैं। हम पहले धौति क्रिया बताते हैं—

धौति

कोई २१॥ फुट लंबा और चार इंच चौड़ा बारीक और मुलायम धुला हुआ कपड़ा लीजिये। इसको स्वच्छ गरम जल में उबाल कर कीटाणु रहित कर लीजिए। फिर ठंढे होने पर धीरे-धीरे चबाते हुये पेट में रख लीजिये और फिर धीरे-धीरे निकाल दीजिए।

जिनको इसमें कठिनता मालूम होती हो वह जल धौति करते हैं।

जलधौति

इस में कपड़े की जगह गुनगुना पानी (सेर, सवा सेर) पी लिया जाता है और कुछ देर पेट में रख फिर धीरे धीरे उलटी की तौर पर निकाल दिया जाता है।

ये दोनों क्रियायें ऐसी हैं जिनसे पेट स्वच्छ हो जाता है और पाख़ाना साफ़ आया करता है। हफ़्ते या दो हफ़्ते में एक बार इन को कर लेने से पेट की कोई शिकायत नहीं हो सकती है न और क़ब्ज़ रह सकता है।

वस्ति क्रिया प्रत्यक्ष किसी विशेषज्ञ द्वारा ही सीखी जा सकती है।

वस्ति

संक्षेप में इसकी क्रिया यही है कि कुक्कुट (या उकड़ू) आसन में बैठ कर पहले उड्डीयान बंध लगाकर फिर मध्यम नौलि किये हुये गुदा मार्ग से छः इंच लम्बी खोखली एक नरई की टोंटी द्वारा नीचे रक्खा हुआ जल आमाशय में खींच लेना होता है। और फिर शौच जाना और फिर पाँव फैला कर मयूरासन द्वारा बचे हुये जलको पेटसे निकाल देना। यह योगियों का एनिमा ही है।

नेति

मस्तिष्क की सफ़ाई के लिये नेति क्रिया से बढ़कर कोई चीज़ नहीं।

नेति — पर इस को भी शुरू में किसी गुरू से ही सीखना ठीक होता है।

इस में १½ बालिश्त कच्चे सूत की बँटी हुई एक डोरी (पतली) होती है जिसे पहले मोम लगा कर कड़ी कर लेते हैं फिर जल में भिगो मुलायम कर नाक से डाल मुँह में से निकाल लेते हैं। इस के द्वारा ब्रह्मांड में जमा हुआ मल, कफ़ आदि सब निकल जाता है। आँख, कान, नाक की सारी शिकायतें दूर होकर नज़ला, ज़ुकाम आदि इससे कभी नहीं होते।

जो लोग सूतनेति नहीं कर सकते वह जलनेति करें और इसके लिये

जलनेति — कोई गुरू की भी ज़रूरत नहीं। सवेरे मुँह हाथ धोने के बाद एक गिलास ताज़ा पानी लेकर नाक से सुड़किये और उसे मुँह से निकालते जाइये। शुरू में ज़ुकाम सा हो जायगा पर बाद में कभी ज़ुकाम, सर्दी कफ़ आदि हो ही नहीं सकते। दृष्टिशक्ति तथा श्रवणशक्ति नेति द्वारा बढ़ाई जा सकती है।

कपाल भाँति और त्राटक[1]

षट् क्रियाओं के अंदर कपालभाँति फेफड़ों को साफ़ करने के लिये है। यह एक प्रकार का प्राणायम है। इससे श्वास क्रिया में १८ गुनी वृद्धि हो जाती है। आक्सिजन की प्राप्ति के लिये कपालभाति ही सब से सुंदर क्रिया है। इसमें पहले सारी सांस को बाहर निकाल कर फिर ज़ोर दे देकर फेफड़ों को साफ़ किया जाता है। एक 'हूं' जैसी आवाज़ होती है और बारंबार उड्डीयान लगाये हुये साँस को बाहर फेंका जाता है।

कपाल भाँति

एकटक किसी निर्दिष्ट वस्तु पर दृष्टि केंद्रित करने को 'त्राटक' कहते हैं। यह क्रिया मन को शुद्ध और वशीभूत करने के लिये है। दृष्टिशक्ति इससे बहुत बढ़ जाती है। पर इन सभी क्रियाओं के अभ्यास शुरु में विशेषज्ञ की देखरेख में करने ही अच्छे होंगें।

त्राटक

---

१ इस क्रिया को भली भाँति जानने के लिये हमारी प्राणायाम संबंधी पुस्तक की प्रतीक्षा कीजिये या किसी विशेषज्ञ से समझ लीजिये। या हम से पत्र व्यवहार कीजिए।

आसन-व्यायाम की वैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि

अभी कुछ वर्ष पहले तक व्यायाम के शास्त्रीय अथवा वैज्ञानिक महत्त्व की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। 'व्यायाम-वीर' पहलवान या फ़ौज के सिपाही लोग ही होते थे। इसके करने का एक मात्र उद्देश्य शारीरिक बल बढ़ाना होता था। सर्व-साधारण जनता का इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं था। लड़के, बूढ़े, अधबूढ़े, जीर्ण रोगी या इसी प्रकार के और भी विपन्न लोगों को भी व्यायाम करना चाहिये—इस बात की शायद कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। और लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ भी व्यायाम कर सकती हैं या इनके लिये भी व्यायाम उतना ही आवश्यक है जितना पुरुषों के लिये, यह बात तो कोई सोच भी नहीं सकता था।

इधर थोड़े दिनों से साधारण स्वास्थ्य-रक्षा तथा उन्नति और विशेष कर कुछ ख़ास-ख़ास रोगों की (मुख्यतः जीर्ण रोगों की) चिकित्सा के रूप में व्यायाम पर वैज्ञानिक व्यायाम-विशारद लोग बहुत ध्यान देने लगे हैं। इस प्रकार का देशव्यापी आंदोलन पहले जर्मनी, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों से आरम्भ हुआ और अब भारत में भी इस विषय के वैज्ञानिक अनुशीलन की ओर विद्वानों तथा सर्वसाधारण का भी ध्यान आकर्षित हुआ है। पर अब भी बहुत कमी है, पाश्चात्य देशों की तुलना में एक प्रकार से नहीं के बराबर। अब भी सुबह या शाम, सड़क या पार्क में व्यायास के लिये दौड़ते या तेज़ी से चलते हुये आदमी को लोग इस दृष्टि से देखते हैं कि मानों कोई असाधारण बात हो। इसका एकमात्र कारण यही है कि अभी भी इस देश में नियमित रूप से, वैज्ञानिक महत्व को समझ कर, व्यायाम करने वालों की संख्या बहुत कम है।

आधुनिक सभ्यता के युग में जैसे बहुत से नये प्रश्न, जो बर्बर युग में अनुपस्थित थे, समाज के सामने आ गये हैं, ज़िसमें शायद सब से

जटिल प्रश्न हो चला है स्वास्थ्य-रक्षा का—ख़ास कर सभ्यों और शिक्षितों की। जो जितना ही ज़्यादा पढ़ा-लिखा और मार्जित है वह उतना ही अस्वस्थ, शारीरिक दृष्टि से दुर्बल और रोगग्रस्त है; और शिक्षितों के मुख्य रोग हैं— कोष्ठ-बद्धता या कब्जियत तथा अजीर्ण या बदहजमी।

आधुनिक युग ही कुछ ऐसा है कि नगर निवासी शिक्षितों को अधिकतर बैठे-बैठे लिखने-पढ़ने का काम करना पड़ता है। चलने-फिरने की न उन्हें ज़रूरत है न फ़ुरसत। वर्तमान वैज्ञानिक युग में घर बैठे उन्हें जीवन-यापन की सभी सामग्रियां भी मिल जाती हैं। किसी बात के लिये हाथ-पैर हिलाने की ज़रूरत नहीं। इससे और जो कुछ भी लाभ हुए हों उस पर विचार करने का इस लेख में स्थान नहीं हैं; पर इससे हानि जो हुई है उससे बचने और दूर करने का उपाय बताना ही हमारा उद्देश्य है।

जीविका के लिये जब मनुष्य को दिन भर मुक्त वायु में घूमना, दौड़ना और युद्ध करना या शिकार करना या खेत में काम करना पड़ता था तब स्वास्थ्य का प्रश्न न उतना जटिल था और न स्वास्थ्यरक्षा के लिये व्यायाम-आंदोलन का प्रश्न ही उठता था। तब तो पहलवानों और सैनिकों को ही या शौकिया बल बढ़ाने की ख़्वाहिश रखनेवालों के लिये ही व्यायाम की ज़रूरत थी। मामूली लोगों का रहन-सहन ही ऐसा था कि आप से ही दिन भर के जीवन-संग्राम में इतना शारीरिक श्रम हो जाता था कि अलग से कोई कसरत करने का सवाल ही नहीं उठ सकता था। आज भी जो इस प्रकार का जीवन बिताते हैं (जैसे खेतिहर, कुली, मज़दूर आदि श्रमिक वर्ग) उनका स्वास्थ्य बिना व्यायाम के ही शिक्षितों से लाख दर्जे अच्छा है। हाँ, पुराने जमाने के श्रमिकों से कहीं गये गुजरे वे इसलिये हो रहे हैं कि वर्तमान सभ्यता के कुछ अभिशाप उन्हें भी लग गये हैं, जैसे—चाय, बीड़ी तथा और कई तरह के नशे। पर श्रमिक-वर्ग को भी दिन भर जितनी शक्ति या 'एनर्जी' वे ख़र्च किये होते हैं, उसकी क्षति-पूर्ति के लिये एक विशेष प्रकार के क्षति पूरक व्यायाम की आवश्यकता

होती है जिससे उपर्युक्त शिथिलीकरण द्वारा उनके टूटे-फूटे सेलों की मरम्मत हो जाय।

तो वर्त्तमान सभ्यता में जब से यह व्यायाम-आंदोलन चला है, विशेषज्ञों को एक ऐसी व्यायाम पद्धति की ज़रूरत महसूस हो रही है जो कम से कम समय में अधिक से अधिक लाभदायक सिद्ध हो खासकर पढ़े-लिखे लोगों को जिनको अधिकतर बैठ कर लिखने-पढ़ने का काम करना पड़ता है। इनका जीवन इतना व्यस्त रहता है कि व्यायाम के लिये २४ घंटे में १०-१५ मिनट का समय निकालना भी इनके लिये कठिन होता है। और यदि किसी तरह निकाला भी, तो साथ ही यह सवाल भी उठता है कि व्यायाम ऐसा हलका होना चाहिये कि दिल, दिमाग पर कोई नुक़सान या बुरा असर न पैदा हो। क्योंकि सही या गलत, विज्ञानविद् आधुनिक डाक्टर यह कहते फिरते हैं कि डँड, बैठक, कुश्ती आदि व्यायामों से दिल पर बहुत ज्यादा जोर पड़ता है और दिमाग पर भी। दिल इन वेचारों (शिक्षितों) का योंही काफी कमजोर होता है और चाय, पान, सिगरेट (या बीड़ी) तम्बाकू या सुंघनी के बिना ये काम ही नहीं कर सकते। ये सभी चीजें 'निकोटीन' नामक विष से भरी होती हैं जो दिल और फेफड़ों के लिये घातक हैं। टहलना बड़ी अच्छी कसरत है। इसके बारे में यह दावा किया जाता है कि भारी कसरतों के सभी गुण इसमें हैं पर उनके नुकसान एक भी नहीं! पर इसके लिए सुबह-शाम कम से कम घंटे दो घंटे का समय चाहिये, खुला मैदान और ठीक मौसम (यानी बारिश वग़ैरह न हो रही हो) चाहिये, पर ये तीनों चारों बातें एक दिन के लिये भी एक साथ नहीं मिल पातीं। तो आख़िर उपाय क्या है?

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि स्वास्थ्य-रक्षा के लिये सब से आवश्यक वस्तु है स्नायु-संस्थानों को मजबूत बनाना। स्नायु-परिवर्धन का

सवाल अब गौण हो पड़ा है। उचित व्यायाम वही है जिससे स्नायुओं पर कम ज़ोर पड़े पर उसका भरपूर असर स्नायु-संस्थानों पर हो।

पर विज्ञान विशारदों का एक मुख्य सिद्धान्त यह भी है कि स्नायु संस्थानों का ठीक हालत में रहना श्वसन-क्रिया पर निर्भर करता है। यानी जिसकी श्वसन-प्रणाली में किसी वजह से कोई गड़बड़ी आ गई हो, उसके स्नायु-संस्थान ठीक हालत में नहीं रह सकते, वैज्ञानिक अन्वेषणों से यह सिद्ध हो चुका है।

तो यह स्पष्ट है कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये पहले ठीक तरीके पर सांस लेना और बाहर निकालना सीखना होगा; क्योंकि विविध स्नायु-संस्थानों में जो कुछ भी मल एकत्रित होता है वह प्रश्वास (सांस बाहर निकालना) द्वारा बाहर फेंका जाता रहता है और श्वास के द्वारा विशुद्ध रक्त का संचालन स्नायु-संस्थानों में होता रहता है। यह आदान प्रदान प्रतिक्षण शरीर के अन्दर होता रहता है और यह क्रिया जिस शरीर की ठीक है वही शरीर निरोग है।

हम जानते हैं कि किसी भी व्यायाम द्वारा सांस तेजी से आने जाने लगती है, यानी विकार तेजी से बाहर फेंके जाने लगते हैं और विशुद्ध प्राणवायु (आक्सिजन) के प्रवेश द्वारा स्नायु-संस्थान विशुद्ध रक्त की प्राप्ति द्वारा उत्फुल्ल होने लगते हैं।

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यह क्रिया जितनी ही खुली और साफ़ जगह में होगी उतना ही ज्यादा फायदा होगा।

व्यायाम के सम्बन्ध में एक अन्वेषण और हुआ है। हम जानते हैं कि हमारे शरीर के अन्दर बहुत सी गिल्टियां (थाइराइड आदि) हैं, जिनका रस स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव रखता है। इन बड़ी गिल्टियों के सिवा असंख्य छोटी गिल्टियां सारे शरीर में व्याप्त हैं, जिन्हें अंग्रेज़ी में 'डक्ट-लेस्ग्लैंड' या अंतःस्रवा ग्रंथियां कहते हैं। इन ग्रंथियों या गिल्टियों का

रस भी शरीर के स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य है। इन अनगिनत ग्रंथियों का रस यदि रक्त को नहीं मिल रहा है तो स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। इन ग्रंथियों का जो सूक्ष्म रस रक्त में बराबर मिलता रहता है उसी के अनुसार रक्त संचालन निर्दोष या सदोष हुआ करता है, यानी यदि इन गाँठों का रस काफी पैमाने पर रक्त को नहीं मिल रहा है तो संचालन ठीक नहीं होगा।

तो यह स्पष्ट है कि व्यायाम-पद्धति उत्तम और वैज्ञानिक वही कहीं जायगी जो—

(१) स्नायु-संस्थानों को दृढ़ तो वनावे पर स्नायुओं पर ज्यादा जोर न डाले।

(२) श्वास-प्रश्वास क्रिया को ठीक वनावे।

(३) अंतः स्रवा ग्रंथियों का रस उचित परिमाण में रक्त में पहुँचावे।

जो व्यायाम-पद्धति ऊपर कही तीन वातों को नहीं सँभाल सकती वह किसी दूसरे पहलू से भले ही अच्छी हो, पर स्वास्थ्यरक्षा या स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से वह दोषयुक्त ही मानी जायगी, यानी उसके द्वारा कुछ दिन के लिये तगड़ी मांशपेशियां, उभड़े हुये पुट्ठे भले ही दिखाई पड़ जायँ पर असल तन्दुरुस्ती से इसका ताल्लुक कम है।

एक दूसरी दृष्टि से विचार करने पर यह बात और स्पष्ट हो जाती है। व्यायाम भी एक प्रकार का व्यवसाय या व्यापार है। प्रत्येक व्यवसायी की सफलता इसी एक वात पर निर्भर करती है कि कम से कम लागत पर ज्यादा से ज्यादा लाभ हो। व्यायाम भी वही उत्तम कहलायेगा कि जिसके द्वारा शरीर के वाहरी-भीतरी सभी कलपुर्जों की पूरी 'ओवर-हॉलिंग' या मरम्मत हो जाय; पर शारीरिक शक्ति या पूँजी में कमी न हो। कुश्ती या दंड-वैठक वगैरह में या फुटबाल, हॉकी आदि खेलों में जितना दम भरता हैजतिनी थकान आती है औंर दिल की धड़कन जितनी बढ़ जाती है,

वैसी कोई बात यौगिक व्यायाम में नहीं होती, पर लाभ उनसे कहीं ज्यादा होता है।

आरंभ में दिल की धड़कन कुछ ज्यादा हो जाती है आसनों के व्यायाम से भी, पर अभ्यास हो जाने पर ऐसा नहीं होता, और करने के बाद थकान या ग्लानि की जगह एक विचित्र स्फूर्ति तथा उत्साह शरीर में भर उठते हैं।

आसनों का सब से पहले पृष्ठवंश या रीढ़ और उसके द्वारा मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। रीढ़ तथा मस्तिष्क से निकली हुई नाड़ियों पर ही आसनों का असर पहले पड़ता है। इन नाड़ियों तथा इनकी असंख्य शाखा-प्रशाखाओं में एकत्रित मल को ये पहले दूर करते हैं और अधिक मात्रा में जो रक्त का संचालन होता है, उससे वहाँ के नाड़ी केंद्र और 'सेल' ताजे हो उठते हैं।

भुजंग, शलभ, धनुष, मत्स्येंद्र आदि आसनों से रीढ़ की सारी हड्डियों का व्यायाम हो जाता है और वहाँ के सब 'सेल' नया ख़ून पाकर स्वस्थ हो उठते हैं।

शीर्ष, सर्वाङ्ग और विपरीतकरणी से मस्तिष्क के अंदर की सारी नाड़ियों का व्यायाम हो जाता है और इसके द्वारा वहां के सारे घटक (रक्तकोष) स्वस्थ और सबल हो उठते हैं।

साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि व्यायाम का एकमात्र उद्देश्य अंग प्रत्यंग को थकाना या परिश्रम करना ही नहीं होना चाहिये, जैसा कि अधिकतर व्यायाम-पद्धतियों द्वारा होता है। वैज्ञानिक तथा आदर्श व्यायाम पद्धति के दो लक्ष्य होते हैं :—एक तो कुछ विशेष अंगों को उपयुक्त श्रम देना और दूसरा यह कि साथ ही साथ कुछ दूसरे अंगों को उचित मात्रा में विश्राम मिले, यानी उनका शिथिलीकरण होता

चले। यह दोनों क्रियायें एक साथ होती चलें, ऐसा एकमात्र यौगिक व्यायाम पद्धति में संभव है, यह वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है। उदाहरणार्थ—शीर्षासन तथा सर्वाङ्ग आसन द्वारा जब मस्तिष्क के अंदर की नाड़ियों तथा उनसे संवद्ध केंद्रों का व्यायाम होने लगता है, उसी समय रीढ़ की नाड़ियों तथा उनसे मिले हुये केंद्रों को आराम भी मिलना शुरू हो जाता है। व्यायाम और शिथिलीकरण (रिलेक्शन) इन दोनों क्रियाओं का उचित सामंजस्यपूर्ण मेल (बैलेंस) जिस पद्धति में हो और साथ ही जिसके करने में शारीरिक शक्ति या पूंजी कम से कम लगे वही आदर्श और वैज्ञानिक मानी जायगी।

०

वैज्ञानिक व्यायाम पद्धति का लक्ष्य एक बात की ओर और रहता है और वह है श्वसन क्रिया और उसका नियंत्रण। यह तो सभी जानते हैं कि कोई भी कसरत या खेल से श्वसन-क्रिया बढ़ जाती है, यानी आदमी तेजी से साँस लेने लगता या हांफने तक लगता है। और प्रायः इसका फल यह होता है कि कसरत खतम होने पर थक जाता है या उतना ही शून्न हो पड़ता है। यह न होना चाहिये। श्वसन-क्रिया बढ़ना तो ठीक है पर उतना ही कि इसकी प्रतिक्रिया जब होने लगे तब आदमी अपने को पहले से ज्यादा ताजा और उत्साह तथा स्फूर्ति से भरा हुआ पावे। एक घंटा कसरत का नतीजा यह न हो कि दिन भर आराम करने की जरूरत मालूम हो। होना यह चाहिये कि १९-२० मिनट कसरत करने से दिन भर खुशी खुशी अपना काम करने का उत्साह तथा स्फूर्ति प्राप्त हो, हाँफ न छूटे, और न पस्त होकर पड़े रहने की आवश्यकता प्रतीत हो। यह तो होता ही है साथ ही श्वास-प्रश्वास क्रिया को ठीक करना और उस को अपने वशीभूत तक कर डालना यह तो यौगिक व्यायाम का विशेष क्षेत्र है। बल्कि विशेष क्षेत्र क्यों, ऐसा कहना चाहिये कि यह एकमात्र यौगिक क्रियाओं द्वारा ही संभव है।

श्वास-प्रश्वास के अतिरिक्त एक व्यापार और है जिसको सँभालना और ठीक अवस्था में रखना आदर्श या वैज्ञानिक व्यायाम पद्धति का लक्ष्य होना चाहिये और वह है विसर्जन या उत्सर्ग क्रिया। शरीर-यन्त्र के अन्दर दो क्रियायें बराबर होती रहती हैं और वह हैं परिपाक और विसर्जन (एसीमिलेशन तथा एलिमिनेशन) की, यानी जो हम खाते पीते हैं उस का रस रक्त आदि में परिवर्तन तथा अविष्ट अंश का मल मूत्र आदि के रूप में उत्सर्ग, स्वास्थ्य की दृष्टि से यह शेषोक्त क्रिया पहली से कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। जो व्यायाम पद्धित इस विसर्जन या उत्सर्ग क्रिया में हमें सहायता नहीं पहुँचाती उसे वैज्ञानिक न कहेंगे।

हम पहले कह चुके हैं, कि पश्चिमोत्तान, पादहस्त मयूर तथा शलभ आदि आसन विशेष कर इस उत्सर्ग क्रिया को शुद्ध करते हैं।

अंत में हम यह भी कह देना चाहते हैं कि उक्त दोनों ही क्रियाओं के सम्बन्ध में आसनों की उपादेयता वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में सिद्ध की जा चुकी हैं और यह बात प्राच्य तथा पाश्चात्य सभी देशों के वैज्ञानिक, व्यायाम विशारद, डाक्टर तथा आदर विशेषज्ञ एक स्वर से स्वीकार कर चुके हैं। अब वैज्ञानिक तथा आदर्श व्यायाम के रूप में आसनों के सम्बन्ध में संदेह करने की गुंजाइश नहीं रह गई है।

शरीर और मत दोनों को पूर्णतः स्वस्थ अवस्था में रखने के लिये जितने और जिस प्रकार के व्यायाम की आवश्यकता हमको है, वह हमको इन योगिक आसनों द्वारा ही मिल सकता है।

The Mission Press Allahabad.